रत्नाभरणम्

दीक्षितोपाह्व-
श्री कन्हैयालालशर्म प्रणीतम् ।

॥ श्रीः ॥

रत्नाभरणम्

श्रीमन्महाराज श्रीहथुआराज्याधीश्वराश्रित

नागरज्ञातीय दीक्षितोपाव्ह

श्रीकन्हैयालालशर्म प्रणीतम्

श्रीमन्माधवशास्त्रिपादानुचरेण श्रीरणवीरदत्ततनुजनुषा

काश्यां रामघट्टवासिना

त्रिपाठ्युपाह्व दुर्गादत्त शर्मणा विरचितया

श्रीनाथाभिधटीकयाऽलंकृतम्

तेनैव प्रकाशितञ्च

काश्यां रामघट्टस्थ हितचिन्तकाभिधमुद्रणालयाध्यक्षैः

कृष्ण बलवन्त पावगी इत्येतैः मुद्रितम् ।

वैक्रमाब्दाः १९९१ खृष्टाब्दाः १९३४

मूल्यम् १)

भूमिका

अस्ति, नास्ति, वादद्वयको सिद्ध करनेवाले छओं तर्क की साधन सम्पत्तिभूत चतुर्दश विद्याओं में एक ज्योतिष विद्या भी है, जिसे नाम से ही सर्व साधारण जानते हैं। परन्तु वह इतनी दुर्लक्ष्य है कि त्रिकालज्ञ महर्षियों के अनुभवसिद्ध तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों में भी कहीं २ विभेद देखा जाता है और जिनको जानने के लिये उत्तमोत्तम दुर्वीन प्रभृति साधनों के रहते हुए अंग्रेजी राज्य काल में भी अंग्रेज विद्वान् गण निचोड़ सिद्ध नहीं कर सके तब गणित शास्त्र का प्रधान सोपानक यह फलित यदि दुर्ज्ञेय हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या! क्यों कि सर्वशक्तिमान् की इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया शक्ति का संकलन व्यवकलन जो जान सकता हो वही पूर्ण फलितज्ञ हो सकता है।

ज्योतिषी को त्रिकालदर्शी होना चाहिये, और वह योग साधन विना हो नहीं सकता चाहे हठ योग का साधन करे वा राजयोग का। फलित शास्त्र का प्रथम सोपान स्वरशास्त्र है और यदि उसका पूर्ण साधन न हो सके तो केरल कुछ मदद कर सकता है केरलीय ग्रन्थों में, अंगचेष्टा, शकुन, वाक्य का निर्देश प्रायः बहुत विधि से प्राप्त होता है, तभी सद्धान्ती ज्योतिषी क्षणिक फल कहने की योग्यता को प्राप्त करसकता है, पर साथ में सामुद्रिक शास्त्र का अध्ययन करना ही चाहिये उसके विना यह विद्या पंगु होती है, सामुद्रिक में प्रायः दहिना या वांया हाथ लोग देखते हैं परन्तु उससे कुछ फल ठीक नहीं उतरता जब तक कपाल पैर अंगों की गठन इत्यादि का भली प्रकार निरीक्षण न करे।

इस विद्या सम्बन्धी आंग्ल भाषा में प्रायः बहुत ग्रन्थ छप चुके हैं हमारे देश में तो विद्या को छिपाना ही उत्तम समझते हैं, ज्योतिषी

को सामयिक व्यवहारज्ञ भी होना चाहिये यदि न जानेगा तौभी उपहास का पात्र होगा किसी ने कहा है " दैवज्ञोऽपि लोकमार्गेण यायात् " क्यों कि प्रकृति की रचना बहुविध है और प्रष्टा सभी कुछ पूछ सकता है। इतना होने पर भी फल सामान्यरीति से ही कहा जायगा सिद्ध ज्योतिषी तो अतीव दुर्लभ है। काल क्रम में विभेद वही डाल सकता है। जैसे कि अकबर बादशाह और भंडर की उत्पत्ति।

पहिले फलितज्ञ तथा बहुपत्नियों को महाराजा लोग आधान काल के साधन हेतु जिस में वीर्यवान् सन्तति हो राज्य का अंग समझकर भरण पोषण किया करते थे पर अब वह समय लुप्त होगया और अनेक पत्न्यादि को वज्रोली क्रिया को छोड़ विलास वश रखने लगे हैं।

बहुत काल व्यतीत नहीं हुआ अनावृष्टि के दोष से प्रजा में हाहाकार मचा हुआ था किसी महाराजा के यहां से ज्योतिषी देवकृष्ण मिश्रजी से पुछवाया गया कि वृष्टि होगी कि नहीं उन्होंने उत्तर दिया मंगल ने रोका है इससे नहीं होती संयोग वश दरबार में पुरोहित जी बैठे थे उन्होंने कहा कि यह कोई बड़ी बात नहीं; ग्रहशान्ति कीजिये मंगल को सामस्तुति द्वारा चलाया जायगा और वृष्टी भी होगी। वह शान्ति काशी जी में तारामन्दिर संकटाजी के पास में हुई थी और अनावृष्टि दोष निवृत्त हुआ था। यह लगभग संवत् १९२१ का जिक्र है और सत्य है।

अब इस प्रकार की शान्ति, नक्षत्रमार्ग का निर्माण करना, मंगल ग्रह को रथ में बैठाकर चलाना, सद्यः ही बादलों का आकर वर्षा करना कर्मकाण्डज्ञों के पास नहीं रहा, रहा तो केवल झगड़ा जो कारयिता को नाना प्रकार से तङ्ग ही करता है, महाराजागण इस विद्या की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते और यदि कोई देते भी हैं तो गुणी तक वह सहायता पहुंचती नहीं। यदि उत्साह के साथ इस

शास्त्र के पुनरुज्जीवन में इस समय से हाथ बटाया जाता तो वेद, तन्त्र, इतिहास, पुराणोक्त विधि भी जी जाती और किसी दिन प्रजाका कल्याण करती और स्वार्थ तथा परमार्थ को पूर्ण करती।

ज्योतिष में तीन स्कंध गणित, फलित, मुहूर्त्त के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन में भी फलित में पांच शाखा हैं, केरल, सामुद्रिक, शाकुन, काल, कुण्डली। कुण्डली में एक छोटी सी समस्या यह है कि लग्न से दशम भाव को राज्य कहते हैं और उसके प्रबल होने से ही मनुष्य बादशाही करता है और निर्बलता आने पर "तीनबेर खातीं सो बीन बेर खातीं हैं," यहां तक कवि की उक्ति सत्य हो जाती है। इसी का हेरफेर प्रधान रूप से देखना है। जैसे साहित्य में शृंगार रस के आधीन सब रस हैं वैसे ही दशम भाव के आधीनस्थ सभी भाव हैं। दशम भाव, धनभाव का भाग्य, पराक्रम का आयु, सुख का आकाश, बुद्धि का प्रतिद्वंद्वी, शत्रु का मन्त्री, व्यापार का सुख, आयु का बल, धर्म का धन, लाभ का खर्चा और व्यय का लाभ है। यह बारहभावों से कैसा सम्बन्ध रखता है और उसके स्वामी कितने बली हैं और आयु के किसने अंश में फल देंगे इत्यादि जानना आवश्यक होता है। प्राणी के उत्पन्न होने के पूर्व भाग्य भाव का उदय हो जाता है और पराक्रम उसके आधीनस्थ होने से पीछे से उदय होगा इसलिये जन्म के बाद ही उदय होता है।

मेषादि द्वादश राशि ग्राम्यपशु, वन्यपशु हिंस्रकपशु, कीट, विलासी मनुष्य, व्यापारी मनुष्य, परिश्रमशील मनुष्य, जलचर तथा मिश्रित जीवों के स्वभाव से निर्मित कर आचार्यों ने उन्हें द्वादश संख्या में उपबद्ध किया है। पक्षियों की तथा स्थावरों की गणना पूर्वोक्त जीवों में ही है। इसी प्रकार ग्रहों को लीजिये ऊर्ध्व दृष्टि, अधो दृष्टि, तिर्यक् दृष्टि, धातुचिंतक, जीवचिन्तक, मूल-चिन्तक, वृद्ध, बाल, युवा, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, वायु, अग्नि

जल, पृथ्वी, इत्यादि से आपस में गुथे हैं याने प्रकृति या ज्योतिष-शास्त्र सम्पूर्ण इन्हीं के आधीन है।

लग्न, होरालग्न, घटीलग्न, क्षणिकलग्न, वैसे ही तदनुकूल ग्रह साधन, उपग्रह साधन, इत्यादि विषय इतने कठिन हैं कि अध्ययन करनेवाला ही उन्हें पूर्णतया जान सकता है। जहां तक बना केवल छोटासा "रत्नाभरण" नामक यह ग्रन्थ बालकों को सुलभ तथा प्रखर फल कहने योग्य, साधारण युक्ति युक्त, केवल कुण्डली पर से ही भूत वर्त्तमान भविष्य के चटपट उत्तर देने के लिये निर्माण कर आप लोंगो के कर कमल में समर्पित करने की चेष्टा की है। योग्य तो यह अभी नहीं हुआ क्यों कि अभी एक ही देश पूर्ण नहीं है पर आगे आप सज्जनों की आज्ञा होगी तो इससे गम्भीर फल कहने के लिये कोई छोटासा ग्रन्थ लिखूंगा।

इसके बनाने में जो कुछ भूल हुई हो विद्वान् गण उसे सुधार कर इसके रत्नों को स्वच्छ करेंगे यही प्रार्थना है।

दीक्षित कन्हैयालाल नागर
महल्ला-सिद्धेश्वरी, काशी।

॥ प्रास्ताविकम् ॥

ननु वर्तमानेषु प्राचीनाचार्यप्रणीतेषु अनेकविधेषु ज्योतिर्निबन्धेषु को नामायं नूतनग्रंथरचनायास इति चेदत्रैत्तन्निवेद्यते यदाबाल्यादेव जीविकोपार्जनव्याकुले प्रकृतजगज्जीवने विद्यार्थिभिः समस्तज्योतिषग्रन्थानामभ्यासो दुरूहप्राय एव, अपि च पुरा अनेकमत्तयवनराजदग्धेषु भारतीग्रन्थसदनेषु असंख्यातज्योतिर्ग्रन्थानामपि भस्मीभूतत्वात् तेषां सम्प्रत्यलाभ एव, प्राप्येष्वपि बहूनामध्ययनाध्यापनपरिपाटी अस्तप्रायैवेति सकलविद्वज्जनविदितमेव। तात्कालिकफलादेशे सक्षमाः गुरुपरम्परात्ताः बहवश्चमत्कृतिपूर्णाः विषया इदानीमपि गुरुजनहृदयेषु सन्ति किन्तु गुरुजनाः अज्ञातहेतुना योग्यपात्रालाभेन वा तान् विषयान् रहस्यमिव प्रायो विद्यार्थिषु न प्रकटयन्ति। इतिकृत्वा परमकारुणिकाः ज्योतिर्विद्वराः श्रीकन्हैयालालशर्माणः आबाल्यात् ज्योतिर्विन्मूर्द्धन्य स्वपितृव्य श्रीरत्नजीदीक्षितास्यारविन्दात्काले काले संश्रुतान् स्वानुभवदृढ़ीभूतप्रामाण्यान् तांस्तान् विषयान्, कांश्चित् स्वानुभूतिमात्राविष्कृतांश्च शनैः शनैः पद्यमयान्विधाय लिखित्वा रत्नाभरणरूपेण संग्रहं अकुर्वन्। तमहं यदा श्रीमन्महाराजश्रीहथुआराज्याधीश्वरश्रीगुरुमहादेवाश्रमप्रसादसाहीमहोदयामन्त्रितो तदपत्यप्राप्तये अनुष्ठानविधानाय संवत्सरैकमितं निवासं अम्बिकापुरे अकुर्वं तदवसरे तत्र श्रीकन्हैयालालशर्मणां अनुकम्पया अपश्यम्। महदुपयोगितामस्यज्ञात्वा चकार च प्रार्थनां मुद्रयित्वा तत्प्रकाशनाय, स्वीकृत्य च तैः अस्य टीकाकरणायाहं आज्ञप्तः। तदुरीकृत्य तैः केषुचिच्छ्लोकेषु पूर्वकृतां हिन्दीटीकां संस्कृतभाषया अनूद्य तेषां साहाय्यमवलम्ब्यैवावशिष्टां टीकां यथामति अरचयम्।

एतद्रचनावसरे मत्प्रियवयस्यैः उपाध्यायोपाह्वश्रीजगन्नाथशर्मभिरनेकविधं साहाय्यं दत्तं तदर्थमहमनुगृहीतोऽस्मि।

एतादृशेषु सर्वज्ञकोविदविरचयितव्येषु ज्योतिर्विषयेषु मादृशस्याल्पज्ञस्य प्रयासो धार्ष्ट्यमेव किन्तु "गुरोराज्ञानुल्लङ्घनीयेति"

शासनेन ग्रन्थकर्त्रा व्यापारितोहमिद्दृशधाष्ट्र्यायेति विद्वद्भिः क्षन्तव्यापराधोस्मि ।

एषा तावत् ममाद्यैव कृतिरिति प्रमादकृताशुद्धिदोषादिबहुला भवेत् अपिच मुद्रणावसरेऽपि अनेकविधसांसारिकप्रपञ्चपङ्कपतितत्वेन यथोचितान्तःकरणसमाध्यभावेनास्मिन् ग्रन्थे बहवो दोषाः समापतिताः सन्तीति तर्कयन् श्रीमत्सु सकलविद्वत्पादारविन्देषु सविनयमेतत्प्रार्थयामि यदस्यावलोकनावसरे ये ये दोषास्तत्रभवतां भवतां दृष्टिगोचरी भूताःस्युस्ताननुकम्पया मदन्तिके पत्रेणावश्यमेव प्रेषयन्तु । तथानुष्ठितेऽस्य पुनर्मुद्रणावसरे तान् संशोध्य प्रकाशयिष्यामि ।

कतिपयैर्भाषानुरागिभिः सुहृद्भिरहमेवं सूचितो यदेनं हिन्दीभाषाटीकयाप्यलङ्कृत्य प्रकाशय, तथा कृते गीर्वाणवागनभिज्ञानां ज्योतिःशास्त्रानुरागिजनानामप्युपकारः स्यादिति, किन्तु अस्याङ्गस्थौल्येन मूल्यवृद्धिरपि दुर्निवारैव, सा तु प्रथमावृत्तावेवास्माकमनपेक्षिता अतस्तदनुरोधानुसरणात्क्षमतापराधस्तैः क्षन्तव्यः । यदि भगवदनुग्रहेणाचिरादस्य पुनर्मुद्रणावसरः प्राप्स्यति तदा तदनुरोधपालनाय प्रयतिष्ये ।

अस्य मुद्रणावसरे हितचिन्तकमुद्रणालयाध्यक्षैः श्री कृष्ण बलवन्त पावगीमहोदयैर्गुरुतरसाहाय्यप्रदानेनोपकृतोऽस्मि ।

रत्नाभरणान्तःसंग्रथितविषया यदि कस्यापि किमप्युपकरिष्यन्ति तदा वयमत्रात्मश्रममवंध्यं ज्ञास्यामः ।

अत्र प्रतिपादितविषयान् श्रीमन्तो ज्योतिर्विदः स्वानुभवनिकषे संपरीक्ष्य तद्याथार्थ्यायाथार्थ्यपरिणतं फलं मत्सकाशे कृपया प्रेषयन्तु तदनुकूलं अन्यावृत्तौ संशोध्य लोकोपकाराय प्रकाशयिष्यामीत्यलमतिपल्लवितेन ।

रामघाट, काशी
चैत्र शुक्ला ६
वै० सं० १६६१

प्रार्थयिता विदुषां विधेयः
त्रिपाठ्युपाह्वो दुर्गादत्तः ।

श्री रत्नाभरणस्थविषयाणां विषयक्रमेण सूची

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

रत्नाभरणम् ।

गौर्यङ्कस्थं शिशुमहं नौमि यस्य कृपावशात् ।
बाल्येऽपि रत्नैः पूज्यन्ते रत्नाभरणभूषिताः ॥ १ ॥

श्रीः श्रीनाथेन तुष्टिः करिवरवदनेनाङ्गदा शङ्करेण ।
प्रीतिः कामेन पूषा गिरिवरतनया मानदा पद्मजेन ॥
इत्थंदेवैरशेषैः क्रतुगणसहितैर्यत्कलास्सन्निपीताः ।
सोयं चन्द्रः कलाभृत् भवतु सुखकरो ज्योतिषां बीजरूपः १

रत्नाभरणग्रन्थोऽयं श्रीनाथाख्यसुटीकया ।
मयाऽलङ्क्रियतेह्यद्य बालानां बोधवृद्धये ॥ २ ॥

गौर्यङ्कस्थमिति—गौर्याः पार्वत्याः अङ्कस्थं क्रोडस्थं शिशुं गणेशं नौमि । यस्य कृपावशात् बाल्येऽपि रत्नाभरणभूषिताः रत्नैः पूज्यन्ते । ग्रन्थकर्त्रा आबाल्यात्पोषितत्वेन स्वपितृव्यकरत्नजीशर्मणस्तत् पत्न्या गौर्या ग्रन्थारम्भे अभिवंदनाय नाम श्लोके संश्लिष्टमिति ।

यद्वाणीरत्नसम्प्रोतं कृतमाभरणं मया ।
तेषां श्रीकाशिनाथानां नौमि द्वंद्वापहं पदम् ॥ २ ॥

यद्वाणीति—यद्वाणीरत्नसम्प्रोतमाभरणं मया कन्हैयालालेन कृतम्, तेषां श्रीकाशिनाथानां गुरुवर्य्याणां द्वंद्वापहं पदं नौमि । अत्र ज्यौतिषे द्वंद्वापहं नाम विकल्पहरणं निश्चयात्मकबोधदायकमिति ।

भावराशिग्रहाणां च धातुमूलादिभेदतः ।
यत्तु पूर्वैः कृता संज्ञा कालजातं फलं तथा ॥३॥

भावेति—भावा लग्नाद्याः यथा-देहं द्रव्यपराक्रमौ सुखसुतौ शत्रुः कलत्रं मृति र्भाग्यं राज्यपदं क्रमेण गदिता लाभव्ययौ लग्नतः । भावा द्वादश तत्र सौख्यशरणं देहं मतं देहिनां तस्मादेव शुभाशुभाख्यफलजः कार्यो बुधैर्निर्णयः ॥ पुनश्च—लग्नं मूर्तिस्तथाङ्गं तनुरुदयवपुः कल्पमाद्यमिति ॥ लगतीति लग्नं कस्मिन् स्थाने लगति क्षितिजे तद्वज्जन्मसमये मनुष्यादीनां प्रसवरूपोदयादेव ज्योतिश्शास्त्रज्ञाः विचारयन्ति तस्मात् लग्नस्योदयं नाम मूर्तिः स्वरूपज्ञानहेतुत्वात्, देहाङ्गतनुवपुःकल्पाद्यादयः पर्याया ज्ञेयाः ॥ द्वादशानां भावानां मध्ये प्रथमत्वाच्चाद्यमिति । राशयो मेषाद्याः प्रसिद्धाः । स्वस्वजातिगुणभेदेन छागाजक्रियेत्यादिसमूहाववोधकत्वात् राशिरिति । चञ्चलोऽतिरवोद्दढाङ्ग इत्येवं वृषे वलीवर्दगोतावुरीत्यादि धात्वर्थभेदेन वली भारवाही सौम्य श्वेतातिरवविषमोदयस्थिरादि गुणधर्मावबोधका असंख्याश्च चिन्तनीयाः । एवम् मिथुनादयोऽपि ॥ तथा ग्रहाणां हेलिः सूर्यः सविता चोष्णरश्मिर्भानुर्मित्रश्चान्ह्यधीशः खगेश इत्यादयः, हेलनाद्धेलिः, सुवति प्रेरयति कर्मणि लोकानिति सूर्यः, प्रसवाधिपत्वात् सवितेति ॥ सविता वै प्रसवानामधिपतिरितिश्रुतेः ॥ एवं चन्द्रमसादेरपि ज्ञातव्यं । धातुमूलजीवादिविषये—शरीरे स्नाय्वस्थ्यसृक्त्वगथशुक्रवसे च मज्जेति धातवः। कफप्रस्वेदमलनखदन्तकेशाद्याश्चोपधातवः पुनश्चैतेषां मध्ये रक्तशुक्लकृष्णादिभेदेन वहुविधाः ॥ एवं धरित्र्यां—स्वर्णं रौप्यं तथा ताम्रं नाणकं कांस्यपित्तले । सीसंजसदलोहं च तालाभ्रकमथापि चैते धाम्याः ॥ मृत्तिकाञ्जनपाषाणं हरितालं मनःशिला । मरकतं पद्मरागश्च प्रवालं ताररत्नक

मित्यग्राम्याः ।। तथा–मूलं काष्ठं त्वचा पत्रं पुष्पं चैव तथा फलम् श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं चित्रं हरीतकमिति मूलभेदाः ।। द्विपदस्तुर्यपादश्च विपदः पादसंकुलः । गौरः श्यामस्तथा रक्तो दीर्घो मध्यश्च खर्वकः । शिशुर्युवा तथा वृद्धो वनिता पंढ एव चेति जीवभेदाः । तथाप्येतेषां मध्ये जीवे निद्रालस्यतन्द्रागमनागमन-भोजनमोचनकण्डूयनादयो मूलधर्माः ।। जीवे–हर्षणं रोचनं चैव-मोहनं शोषणं तथा मारणं चेत्यमी बुद्धौ जीवधर्माः प्रकीर्तिता इति जीवधर्माः ।। धातौ जीवमूले यथा घटितं जीवनिमित्तिकमा-भूषणपात्रनाणकादिकमाकरस्थं मूलमघटितं धातुः ।। मूलेप्येवं शुष्ककाष्ठफलादिकं मूलं वृक्षस्थं धातुरौषधादिनिरूपितं जीवम् ।। तथा चैतेषां कालकलनाक्रमेण पूर्वाचार्यैस्तत्तद्भावानां शरीरे विभागकल्पना कृता यथा–कालाङ्गानि वराङ्गमाननमुरो हृत्क्रोड वासोभृतो बस्तिर्व्यंजनमूरुजानु युगले जंघे ततोऽङ्घ्रिद्वयम् । पुनश्च कंदृक्श्रोत्रनसाकपोलहनवो वक्त्रं च होरादयस्ते कण्ठांसक-पाणिपार्श्वहृदयक्रोडानि नाभिस्ततः । बस्तिः शिश्नगुदे ततश्च वृषणावूरू ततो जानुनी जङ्घाङ्घ्रीत्युभयत्र वाममुदितैर्द्रेष्काण-भागैस्त्रिधा ।। प्रथमे द्रेष्काणोदये मस्तकात् वक्त्रान्तं, द्वितीयद्रेष्का-णोदये कण्ठान्नाभ्यन्तम्, तृतीयस्योदये बस्ते रङ्घ्र्यन्तामिति संप्रदायः परन्तु यदा कश्चित् पृच्छक आगत्य पृच्छति मम मुखे हृदयादौ पदादौ कस्मिन् कस्मिन् स्थले लक्ष्मादिकम् वर्तत इति वक्ष्यमाण विधिना चिह्नादिकं द्रष्टव्यमिति गुरवः ।। तत्र लग्ने प्रथमद्रेष्काणोदये शीर्षादितो वक्त्रान्तमासप्तमं, ततः पञ्चमात् कण्ठादिकं लाभान्तं, धर्मात् कट्यादिकं । द्वितीयद्रेष्काणोदये पञ्च-मात् शीर्षादिकं, धर्मात् कण्ठादिकं, लग्नात् कट्यादिकं । तृतीय-द्रेष्काणोदये धर्मात् शीर्षादिकं, लग्नात् कण्ठादिकं, पञ्चमात् कट्या-दिकमङ्गविभागो ज्ञेयस्तथानुभवात् ।। तथा ग्रहाणां सम्बन्धा-

दपि लक्ष्मादयो ज्ञेयाः यथा, भावकुतूहले—लाभारिसहजे भौमे व्यये वा शुक्रसंयुते । वामपार्श्वगतं चिन्हं विज्ञेयं व्रणजं बुधैः ॥ व्यये गुरौ विधौ भाग्ये लाभारिसहजे बुधे । गोलकं गुदमध्यस्थं व्रणं वा प्रवदेद् बुधः ॥ लग्ने क्षितिसुते मन्दे शुक्रदृष्टे त्रिकोणभे । लिङ्गे गुदसमीपे वा तिलकं संदिशेद्बुधः ॥ सुतालये भाग्यनिकेतने वा कविर्यदा चाष्टमगौ सजीवौ । कटिप्रदेशे प्रवदेन्नराणां चिह्नं विशेषादिह जातकज्ञाः ॥ शनौ चतुर्थे तनुभावगे वा तदा सुचिन्हं जठरे नरस्य ॥ धने कवावष्टमलाभगे वा दिवाकरे मंदकुजौ तृतीये ॥ तत्र कीदृक् चिह्नं सहजमागंतुकं वा तत् राशिवशाद् ज्ञेयमिति बृहज्जातके॥ तस्मिन् पापयुते व्रणं शुभयुते दृष्टे च लक्ष्मादिशेत् स्वर्क्षांशे स्थिरसंयुतेषु सहजः स्यादन्यथागन्तुकः । मन्दे क्ष्मानिलजोऽग्निशस्त्रविषजो भौमे बुधे भूभुवः सूर्ये काष्ठचतुष्पदेन हिमगौ शृङ्ग्यब्जजोऽन्यैः शुभम् एवमुक्तम् । तथा कुटुम्बे धनचक्षुर्मुखवाक् स्त्रीपुत्रादिकम् । सहजे पराक्रममार्ग बाहूभ्रातृभृत्यादयः । एवमग्रेऽपि भावादौ सर्वं धातुमूलजीवादिकं चिन्त्यं ग्रहराशिवशात् तथा चोक्तम् ॥ मन्देन्दूरगभौमाः स्युर्धातुः सवितृभार्गवौ । मूलं जीवश्च सौम्यश्च जीवं प्राहुर्महाधिय इति ग्रहवशेन । तथा स्थानमपि—शुक्रे चन्द्रे जलाधारो देवतायतनं गुरौ ॥

राशौ तु—स्थिरे धातुश्चरे जीवं द्विस्वभावेच मूलकमिति ॥ धातुर्मूलं जीवमित्योजराशौ युग्मे विन्द्यादेतदेव प्रतीपम् ॥ लग्ने योंशस्तत्क्रमाद्गण्य एव संक्षेपोऽयं विस्तरात्तत्प्रभेद इति । तस्मात् पूर्वाचार्यैर्यायाः संज्ञाः कृतास्ताभिः कालजातं ग्रहराशियोगवशात् स्वस्वगुणकर्मजं फलं भवतीति ॥ ३ ॥

भावाधिपात् तथा भावात् नेत्रवेदभवास्थिताः ।
सौम्याः पापाः खगाः प्रश्नाज्जन्मतो वर्षतः सुधीः ॥ ४ ॥

भावाधिपादिति—भावाधिपात् लग्नादिभावेश्वराणां सकाशात् तथा पुनर्भावादपि नेत्रवेदभवस्थिताः नेत्रं लग्नाद् द्वितीयं वेदश्चतुर्थं भवमेकादशं तेषु सौम्याः शोभनाः पापाः पापग्रहाः स्थिताः तान् प्रश्नलग्नात् जन्मलग्नाद्वर्षलग्नाच्च सुधी विद्वद्द्वराश्चिंतयेत् ॥ ४ ॥

द्वादशे दशमे चैव तृतीये प्रबलाः खगाः ।
क्रमेण धनपातालभवस्थानां बलंहराः ॥ ५ ॥

द्वादशेति—लग्नादुद्द्वादशे दशमे तृतीये प्रबला बलिनः खगा ग्रहाश्चेत्तदा क्रमेण द्वादशस्थो ग्रहो धनस्थस्य दशमस्थो ग्रहः पातालस्थस्य तृतीयस्थो ग्रहो भवस्थस्य बलं हरतीति उक्तञ्च जैमिनिना ॥ दारभाग्यशूलस्थार्गला निदध्यातुः ॥ कामस्था भूयसा पापानाम् ॥ रिष्फनीचकामस्थाविरोधिन इति प्रागूवत्रिकोणे ॥ विपरीतं केतौ ॥९॥

दुर्बलाः कारकाः पापाः सबला बन्धकाश्शुभाः ॥
तदा पापकृतां पीडां हत्वा सौख्यप्रवर्धकाः ॥ ६ ॥

दुर्बला इति—यदा पूर्वोक्ताः कारका धनपातालभवस्था ग्रहाः पापाः स्युः शुभाश्च प्रतिबन्धकाः अर्थात् व्ययदशमतृतीयस्थाः स्युस्तदा पापोद्भवां पीड़ां हत्वा सौख्यप्रवर्धका भवन्ति । एते खल्वर्गलायां कारकास्तथान्येऽपि यथा—द्युमणिरमरमन्त्री भूसुतः सोमसौम्यौ गुरुरिनतनयारौ भार्गवो भानुपुत्रः । दिनकरदिविजेज्यौ जीवभानुज्ञमन्दाः सुरगुरुरिनसूनुः कारकाः स्युर्विलग्नात् ॥ आत्माधिकः कलादिभिर्नभोगः ॥ सप्तानामष्टानांवा ॥ १० ॥ स ईष्टे बन्धमोक्षयोः ॥ ११ ॥ तस्यानुसरणादमात्यः ॥ १२ ॥ तस्य भ्राता ॥ १३ ॥ तस्य माता ॥ १४ ॥ तस्य पुत्रः ॥ १५ ॥ तस्य ज्ञातिः ॥ १६ ॥ तस्य दाराश्च ॥ १७ ॥ अपि च—दिवार्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ । शनैश्चरेन्दू निशि तद्विपर्ययात् ॥ अर्यम्णः पुण्यभे तात

इन्दोर्माता च तुर्यतः । कुजात् तृतीयतो भ्राता बुधात्तुर्ये च मातुलः ।। देवेज्यात् पञ्चमात् पुत्रो दैत्येज्याद् द्यूनगाः स्त्रियः । शनेरष्टमतो मृत्युरित्थं तातादिकारकाः ।। इति ।। अधुना संप्रवक्ष्यामि विशेषं भावकारकम् । जनुर्लग्ने च विद्याद्वै आत्मकारकमेव च ।। एकादशे ज्येष्ठभ्राता तृतीये तु कनिष्ठकः । सुते सुतं विजानीयात् तथा सप्तमभावतः । सुतस्थाने ग्रहास्तिष्ठेत् सोऽपि कारक उच्यते ।। अनेन स्वेष्टभावस्था ग्रहा अपि कारका ज्ञेयाः ।।

एवं शुभाः कारकाश्चेत् पापाश्चैवावरोधकाः ।
बलाबलं विचार्यैवं प्रबलस्य फलं वदेत् ।। ७ ।।

यदेति—यदा शुभाः सौम्यग्रहाः कारकाः पापाः पापग्रहा अवरोधकास्तदा तेषां मध्ये बलाबलं विचार्य निश्चयेन प्रबलस्य शुभस्याशुभस्य वा खगस्य फलं वदेत् ।। उक्तञ्च—क्रूरोऽपि सौम्याधिकवर्गशाली शुभोऽतिसौम्यश्शुभखेचरश्चेत् । सौम्योऽपि पापाधिकवर्गयोगान्नेष्टोऽतिनिन्द्यः खलु पापखेटः ।। राशीशमित्रोच्चरिपुक्रमेण चिन्त्यं तनोरप्यनयैव रीत्या । भावेषु सर्वेष्वपि वर्गचक्रं विलोक्यमेतत् फलमूहनीयम् ।।

मित्रामित्रात्मकं ज्ञात्वा जन्माङ्गे तद्दशादिकम् ।।
आयुर्दायस्य वा खण्डं त्रिधा कृत्वा फलं वदेत् ।। ८ ।।

मित्रेति- नैसर्गिकतात्कालिकदृष्ट्यात्मकमैत्र्यादिकं ज्ञात्वा जन्माङ्गादौ भावाधिपस्य दशाधिपस्य वा आयुर्दायस्य खण्डं त्रिधा कृत्वा अर्थात् पिण्डायुर्निसर्गायुरंशायुर्भेदेन जैमिनिमतेन वा गणितानीतायुर्वर्षगणं त्रिधा विभज्यार्गलोक्तविधिना वा दशेश्वरस्य वर्षाण्यप्येवं त्रिधा विभज्य फलं कथयेत् ।। नैसर्गिकमैत्री यथा—शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवेस्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मि-

जश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः ॥ जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्की समौ मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुस्समाश्चापरे ॥ सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा सौम्यार्की सुहृदौ समस्सुरगुरुस्सौरस्य चान्येऽरयो ये प्रोक्ताः स्वत्रिकोणभादिषु पुनस्तेऽमी मया कीर्तिताः ॥ तात्कालिका यथा—अन्योन्यस्य धनव्ययायसहजव्यापारबन्धुस्थितास्तत्काले सुहृदः स्वतुङ्गभवनेऽप्येकेऽरयस्त्वन्यथा । व्येकानुक्तभपान् सुहृत्समरिपून् संचिन्त्य नैसर्गिकान् तत् काले च पुनस्तु तानधिसुहृन् मित्रादिभिः कल्पयेत् ॥ दृष्टिमित्रम् यथा—दृष्टिः स्यान्नवमपञ्चमे बलवती प्रत्यक्षतः स्नेहदा पादोनाखिलकार्यसाधनकरी मेलापकाख्योच्यते । गुप्तस्नेहकरी तृतीयभवभे कार्यस्य संसिद्धिदा त्र्यंशोना कथिता तृतीय भवने पड्भागदृष्टिर्भवे ॥ दृष्टिः पादमिता चतुर्थदशमे गुप्तारिभावास्मृताऽन्योऽन्यं सप्तमभे तथैकभवने प्रत्यक्षवैराऽखिला । दुष्टं दृक्कितयं क्षुताह्वयमिदं कार्यस्यविध्वंसदं संग्रामादिकलिप्रदं दृशइमाः स्युर्द्वादशांशांतरे ॥ पश्यन मित्रदृशा सुहृद्रिपुदृशा शत्रुः समस्त्वन्यथा । तिथ्यर्काष्टनगांकशैलखचराः सूर्यादिदीप्तांशकाः ॥ चक्रे वामदृगुच्यते बलवती मध्याद्यथा वेश्मनीत्येकर्क्षेऽपि दृगुच्यतेऽर्थजननीत्येके विदुः सूरयइति ।

शुष्कदीप्तादिभेदं च बालवृद्धक्रमं तथा ।
चेष्टोच्चारितवर्णांश्च ज्ञात्वा सम्यग्वदेत् फलम् ॥ ९ ॥

शुष्केति—शुष्कदीप्तादिभेदं तथा बालवृद्धक्रमं चेष्टोच्चारितवर्णांश्च सम्यक् ज्ञात्वा ततः फलं वदेत् । शुष्कार्द्रसामान्य इति त्रयो भेदास्तत्र शनिसूर्यभौमाः शुष्काः, गुरुबुधौ सामान्यौ, चंद्रशुक्रावार्द्रौ । मेषसिंहवृश्चिककुम्भाः शुष्काः, कन्यामकरयोरुत्तरार्धं कर्को मीनश्चार्द्राः । कन्यामकरयोः पूर्वार्धं जलसामीप्यद्योतकम् ।

वृषमिथुनतुलाधनानि सामान्याः। शुष्कग्रहः शुष्कराशौ शुष्कनवांशे स्थितश्चेन्नरो दुर्बलो नीरसो क्रोधी च भवति। आर्द्रे स्थूलादिरूपं विपरीतम्। दीप्तादिभेदो यथा–स्वोच्चे दीप्तस्समाख्यातोनीचे दीनः प्रकीर्त्तितः । मुदितो मित्रगेहस्थः स्वस्थश्च स्वगृहे स्थितः। शत्रुगेहस्थितः सुप्तो जितोऽन्येन निपीडितः। नीचाभिमुखगोहीनो मुषितोऽस्तंगतो ग्रहः । सुवीर्यः कथितः प्राज्ञैः स्वोच्चाभिमुखसंस्थितः । अधिवीर्यो निगदितस्सुरश्मिः शुभवर्गजः ॥ बालवृद्धादि यथा–विषमराशौ प्रत्येक षडंशात्मकेषु पंचविभागेषु ग्रहः क्रमेण बालः कुमारो युवा वृद्धो मृत इति पश्चावस्थात्मको भवति । समराशौ तु वैपरित्येन योजना । चेष्टादिविषयस्तु केरलीये विस्तृतो यथा–ऊर्ध्वदृष्टे जीवचिन्ता मध्ये धातुश्च चिन्तयेत । मूलं भूम्यवलोकेन कथयेद्गणकोत्तम इत्यादि प्रत्येकांगस्पर्शे। तत्रैव अनुस्वारविसर्गौ ङ ऊ ङ ञ ण न माश्चैतेषां दग्धसंज्ञा। ऋ ॠ ऌ ॡ एते नपुंसकाः ॥ शेषास्तु पुंस्त्रीरूपाः। उत्तरा विषमा वर्णास्समाश्च अधरास्स्मृताः। एतेष्वपि अ, ए, च, त, य, वर्गेषु प्रथमाक्षराण्युत्तरोत्तरसंज्ञकानि, अतो उत्तरोत्तरोत्तरौ, समवर्गास्समाक्षराणि चाधराधराणि। विषमवर्गे विषमवर्णाः उत्तरोत्तराः अ, इ, ए, ओ आदयः। एवं ज्ञात्वा उत्तरोत्तराः दूतोच्चारितवर्णेषु शुभफलाः शीघ्रसिद्धिदा ज्ञेयाः । अधरा विपरीताः । धातुजीवमूलादिमुष्टिलूकाचोरितद्रव्यादिज्ञानं, कदा कार्यं भविष्यतीति सर्वं प्रश्नरत्नादौ विस्तरेणावलोकनीयम् ।

तथा प्रवासाद्यवस्थां रक्तशुक्लादिवर्णकम् ।
ज्ञात्वेन्दुं च फलं ब्रूयात् बीजरूपी यतः स्मृतः ॥१०॥

तथेति । प्रवासाद्यवस्था यथा–प्रवासनाशौ मरणं जयश्च हास्यारतिः क्रीडितसुप्तभुक्ताः । ज्वराख्यकम्पस्थिरता अवस्था मेषात् क्रमान्नामसदृक् फलास्स्युः ॥ विहाय राशिं चन्द्रस्य भागा

द्विघ्नाः शरोद्धृताः । लब्धं गता अवस्थाः स्युर्भोग्यायाः फलमादिशेत् । चन्द्रवत् सूर्यादीनामपि अवस्थाज्ञेयाः । शयनमुपवेशनं नेत्रपाणिरस्मात् प्रकाशगमने स्तः । आगमनमास्था नीचागमो भुजिर्नृत्यलिप्सा च । कौतुकमथनिद्राख्याऽवस्था द्वादशमिता ग्रहाणां स्युः । यदुडुनि जन्मनि खचरस्तदुडुखचरसंख्ययो र्निहतिः । ग्रहलवसंख्यागुणिता जन्मर्क्षनिजेष्टमानयुता । रवितष्टा शयनाद्या जनुषि खगानामवस्थाः स्युः ॥ जनुपीति प्रश्नादावपि चौरादीनां ज्ञानेऽपि विचार्याः । दृष्ट्याद्यवस्था—या पूर्वसिद्धान्तकृती कृता सा स्वनामवर्णात् सहितार्कतष्टा । स्वक्षेपयुक्ता गुणशेपिता स्यात् ॥ रव्यादीनां क्षेपकाङ्काः—शरद्विद्वित्रीष्वग्न्यब्धिवेदाः क्रमात् स्युः । तिस्रोवस्था दृष्टिचेष्टाविचेष्टाः स्थानावस्थाशक्तियोगात् फलं स्यात् ॥ अथाग्रे वर्णविचारस्तद्यथा—रक्तं पीतं सितं कृष्णं चन्द्रे वर्णचतुष्टयम् । ज्ञातव्यं च प्रयत्नेन प्रश्नकाले सदा बुधैः ॥ रविर्भौमः सितः सौम्यो गुरुस्सौरी शशी तमः । वर्गेशा अर्कवर्गादौ ग्रहा ज्ञेया विचक्षणैः ॥ स्यातां रविकुजौ रक्तौ पीतौ जीवबुधौ ग्रहौ । शशिशुक्रौ सितौ वर्णौ कृष्णत्वं राहुमन्दयोः ॥ यद्वर्गवर्णगश्चन्द्रस्तस्य स्वामी तु यो ग्रहः । तस्य वर्णेन वर्णत्वं शशाङ्कस्य प्रजायते ॥ तत्फलं तु—रक्ते चन्द्रे भवेद्युद्धं कृष्णे मृत्युर्न संशयः । पीते शुभं विजानीयात् सिते शुभतरं भवेत् ॥

द्वादशवर्गा यथा—

रविकुजशुक्रसजीवमन्दाद्याः । चन्द्रश्चन्द्रक्रमतो राशौ नवभागजस्तथा वर्णाः । लेख्याः पापविभागे गतेन्दुतात्कालिके कृते पश्चात् ॥ लाभालाभं हि कदा विजयं सुलभं हि मारयुद्धादौ । एतत्सर्वं नरपतौ तुंबुर्वावर्त्ते नरहरौ स्पष्टम् ॥

तत्र तात्कालिकेन्दुर्यथा ॥ इष्टनाड्यो हता धिष्ण्यैः षष्टि-

भागाप्तशेषके । अश्विन्यादींदुभुक्तेन युक्तस्तत्कालचन्द्रमाः ॥ क्रूरक्षेत्राक्षरे चन्द्रे न शुभं सर्वकर्मसु । शुभक्षेत्रे शुभं सर्वं प्रस्तारे चन्द्रनिर्णयः ॥

चरादिराशिसंस्थानां वर्गाणां बाधकानपि ।
षोडशानाञ्च योगानामित्थशालं विशेषतः ॥ ११ ॥

चरादीति–चरस्थिरद्विस्वभावादौ कस्मिन् राशौ खगो वर्तत इत्यादिकम् विचार्य, चरे बहुविधाः प्रश्नाः स्थिरे चैकं तथापरे । द्वन्द्वं लग्नांशमानेन तदधीशमुखादपि ॥ कस्मिन्नक्षरभागस्थो लग्नेशः कार्यपस्तथा । योनिमैत्र्यात् कार्यसिद्धिर्वैरे हानिः परे जगुः ॥ तुंबुर्वावर्त्ते चन्द्रवल्लग्नेशं कार्येशं चावलोकयेत् तयोश्चन्द्र इव बीजरूपत्वात् । नवांशाक्षराणां यदा योनिमैत्री स्यात्तदा कार्यसिद्धिरन्यथा हानिरेवेति ॥ षोडशयोगानामिक्कवालादीनां व्याख्यानं स्पष्टतरं नीलकण्ठ्यादौ अस्ति तत्तत एव द्रष्टव्यम् ॥

दक्षवामस्वराभ्या च भद्रचक्रात्तथैव च ।
अष्टवर्गादि सकलं ज्ञात्वा सम्यक् फलं वदेत् ॥ १२ ॥

दक्षवामेति–दक्षवामस्वराभ्यां स्वरशास्त्रगम्योऽयं विषयः, भद्रचक्रात् सर्वतोभद्रचक्रात्, अष्टकवर्गादिकं ग्रन्थान्तरात् सकलं ज्ञात्वा फलं सम्यक् वदेत् । उक्तं च समरसारे—चन्द्रे वहे नृपविलोकन गेहवेशपट्टाभिषेकसुखकर्म भवेच्छुभं यत् । सौरे तु मज्जनवधूरतिभुक्तियुद्धमुख्यं भवेदशुभकर्म फलाय सत्यम् ॥ यात्रा विवाहो वस्त्रालंकारधारणं शांतिकर्म दिव्यौषधिरसायनकल्पनं विद्यारम्भः स्थिरं कार्यं निशाकरवहे शुभम् । विद्वेषोच्चाटनादिद्यूतयुद्धस्नानभोजनमैथुनव्यवहारादिषु दक्षनाडी शुभावहा । दूतो वामनाड़ीवहे वामगतो पृष्ठगतो वा पृच्छति तत्र प्रश्ने समाक्षराणि चेत् तदा पुत्रलाभादिकं

सर्वं सफलं रात्रौ भविष्यति। दक्षनाड़ीवहे विषमाक्षरैः दक्षपार्श्वगतः सन्मुखस्थो वा पृच्छति तदा जयपुत्रलाभादिकं दिनोदये भविष्यति। शून्यवाहे शून्यमिति। भद्रचक्रनिर्माणम् यथा—पूर्वोदीचीलिंखालीर्नयनयगणिताः कंदकोष्ठेष्वथैशात्कोणे तोयस्वरान्वन्हयुडुत इह दिगालीषु भान्यंतरातु। नारीवर्णान्पुरोक्तानवकहडमुखानन्तरास्माद्वृपादीन् खेटान्सम्बन्धिवारैः सह लिख च तिथीन्मध्यतो नन्दिकादीन्॥ ऐंद्र्यादिमध्यभचतुष्कवेधतो वेधमादिशेत्क्रमशः। घङछां पणठां धफढां थझञामिति सर्वतोभद्रम्॥ अष्टकवर्गादावप्येकाधिपत्यशोधनद्वारा नक्षत्रानयनं कृत्वेष्टानिष्टवर्षं ज्ञात्वा फलं वदेदिति॥

स्थूलसूक्ष्मकारणाख्यशरीरत्रयभेदवत् ।
तनोर्नन्दात् द्वादशांशात् फलं ब्रूयाद्विचक्षणः॥१३॥

स्थूलेति—स्थूलं बाह्यशरीरं, सूक्ष्मं आभ्यन्तरं, कारणं लिङ्गाख्यं। एतच्छरीरत्रयभेदवत् तनोर्लग्नात्, नन्दात् नवमांशात्, द्वादशांशात् बाह्याभ्यंतरलिङ्गाख्यानां क्रमेण फलं ब्रूयात् विचक्षणो ज्योतिर्वित्॥

स्थानप्रणाशं प्रकरोति जीवः
स्थानस्य वृद्धिं तनुते हि मन्दः ।
पापस्य दृष्टिर्बहुदुःखदात्री
शुभस्य कल्याणकरी प्रमोदा ॥ १४ ॥

स्थानेति—यस्मिन्भावे जीवः स्थितस्तस्य भावजन्यफलस्य प्रणाशं प्रकरोति। प्रणाशस्त्वेकदेशीयः। मन्दः स्थानस्य वृद्धिं तनुते विस्तारं करोति। पापस्य दुष्टग्रहस्य दृष्टिर्बहुदुःखदात्रीति स्पष्टम् शुभस्य दृष्टिर्विचक्षणा कल्याणकरीति प्रोक्तम्।

त्रिषडायेशाश्चायुर्दाये नृपयोगेऽपि शुभा ह्यतिपापाः ॥
केन्द्रेशत्वात् दोषकराः स्युः कोणेशत्वात् चाल्पं केचित् १५

त्रिषडायेश इति—त्रिषडायेशास्तृतीयषष्ठलाभेशाः आयुर्दायविषये नृपयोगविषये च शुभाः शुभाग्रहा अतिपापाःभवन्ति । कदेति केन्द्रेशत्वात, अर्थात् त्रिषडायेशाः केन्द्रेशाश्चेत् स्युस्तदा दोषकराभवन्ति अरिष्टकराः स्युः, राज्यापहारकाः स्युः । कोणेशत्वात्तेषां केचित् ज्योतिर्विदश्चाल्पं दोषकरत्वं कथयन्ति तदस्माकन्तु नानुकूलम् । विशेषो लघुपाराशर्यादौ स्पष्टः ॥

त्रिकेशाश्च शुभाः पापाः पापानां तर्हि का कथा ।
ते वै योगेन पातेन नितरां भावहानिदाः ॥ १६ ॥

त्रिकेशाश्चेति—त्रिकेशाः षष्ठाष्टमव्ययेशाः शुभा अपि पापफलदा भवन्ति, तदा पापानां पापदत्वकथने कः समर्थः, तेषां त्रिकेशानां ग्रहाणां योगे सम्बन्धे भावानां मध्ये पाते च ते नितरामत्यन्तं भावस्य हानिदाः क्लेशदा भवन्ति इति ॥

उदयाद् द्रविणं द्रविणात्सहजं
सहजाद्धि सुखं सुखतस्तनयान् ।
क्रमतोऽग्रिमभावफलं तनुते
तुहिनादपि चोपचयेस्ति शुभाः ॥ १७ ॥

उदयादिति—उदयाल्लग्नात्तृतीयषष्ठदशमैकादशस्थानेषु शुभग्रहाश्चेद्धनभावगतविषयाणां वृद्धिर्भवति । एवं द्रविणात् द्वितीयभावादुपचये शुभग्रहाश्चेत्सहजं तृतीयं सबलं भवति । एवं तृतीयादुपचये शुभे सुखं, सुखतः पंचमम् बलवद्भवति । एवमुपचयशुभवा-

न्भावः स्वादग्रभावजं सुखं जनयति । चन्द्रादुपचये शुभयुतेऽप्युक्तफलं भवतीति ॥

सव्याऽसव्यक्रमेणैव खगानां चालनाद् ध्रुवम् ।
भुक्तं भोग्यं च कथयेत् लग्नतश्चापि कल्पनात् ॥ १८ ॥

सव्येति—सव्यं दक्षिणमार्गं तदितरमसव्यं धनभावमुखाद् व्ययभावमुखाच्च द्रष्टुर्ग्रहस्य सकाशात्तेषां प्रोक्तक्रमेण वर्षमासदिनघट्यादिक्रमेण चन्द्रयोगादेतादृग् भुक्तं भोग्यं वर्तमानञ्च फलं शुभपापग्रहयोगदृष्टिभाववशात् कल्पनां कृत्वा कथयेत् ।

॥ इति श्रीरत्नाभरणे श्रीनाथाभिधटीकायां प्रथमरत्नं ॥

अथ द्वितीयरत्नम् ।

आत्मा पिता पालकराजशौचप्रतापसुस्वाथ्यधनानि शर्म ।
ज्ञानोदयौ यज्ञनयादि वैद्युद्यन्त्राणि चक्षुश्च रवेः सकाशात् १९

आत्मेति—स्वोच्चसुहृत्शत्रुगते सूर्ये शुभपापग्रहयुक्ते च तस्यात्मनः शुद्धत्वाऽशुद्धत्वादिकं ज्ञेयम् । पितेति—रविर्वा रवेः सकाशान्नवमदशमगते पापे पापावलोकिते वा त्रिकगते तस्य पितुः कष्टं अन्यथा सुखं ॥ सूर्यो लग्नेशस्य शत्रुस्सन् शत्रुदृशा लग्नेशं पश्यति तदा तस्य पिता शत्रुवत् व्यवहरति ॥ पालकेति—चरस्थो रविश्चापोक्लिमगतस्सन् यावन्नवभावगतस्तावत्संख्याकास्तस्य पालकाः पालनकर्त्तारो वक्तव्याः ॥ राजेति—प्रतिश्रुतौ राज्ञादीनां व्यवहारे पापशुभयोगदृष्टिचरादिराशिस्थानविचारः सर्वत्र द्रष्टव्यः । यादृशो रविस्तादृशो नृपः । शौचेति—रवौ शुभपापयुक्ते द्विस्वभावगतेऽरिदृष्टे कदापि चित्तशुद्धिस्तस्य न भवति, पापयोगे निर्घृणः, शुभे स्वच्छः । एवं रवेः सकाशाद् द्वितीये शुभग्रहे स्थिते सति रवौ दशमायतृतीयस्थे शुभषड्वर्गगते

कदापि निर्धनो न भवति । शर्म कल्याणं तदपि रवेः सकाशादेव ज्ञेयं । प्रतापं तृतीयेशत्वाच्छुभादियोगाच्च पूर्ववत् । सुस्वास्थ्यं कदा भविष्यतीत्यादिविचारे जन्मप्रश्नलग्नात् यदा रविः सौदर्शनीय-विधिना जन्मलग्नस्थेन गोचरगतग्रहाणां दृष्टियोगे यदा भविष्यति तदा तस्मिन्मासे दिने वा तस्य सुस्वास्थ्यं भविष्यति । रवौ पञ्चमेशेन गुरुणा वा मित्रदृशा दृष्टे ज्ञानी, बुधयुक्ते चातुर्ययुतः, पृष्ठोदयगते पश्चात्बुद्धिर्भवति । बुधयुक्ते चन्द्रयुक्ते वा दयावान् । व्ययेशधर्मेशयुक्ते रवौ यज्ञकर्त्ता । धर्मेशो धनेश्वरस्य शत्रुश्चेत्तदा धर्मव्याजेन मिथ्या-कोपान्तकृत्, शुभदृष्टे नयवान् ॥

लग्नेशेन सूर्यस्य पञ्चधा मित्रामित्रादिवशाद्दीर्घमध्याल्पाद्यायुः प्रदत्वं । वैद्युतयन्त्राणां प्रस्फोटने कल्पनादौ वा तज्जन्मघातादौ वा सूर्ये गुरुसौम्यचन्द्रमसादियुक्ते दृष्टे वा भूचरराशिगते भौमनवमां-शस्थे भौमदृष्टे वा वैद्युत्कर्मव्यवसायादिकारितां जनयति । पञ्चमस्थे पञ्चमेशेन संबद्धे वा रवौ मान्त्रिकः । एतत् ग्रहभाववशात् वक्तव्यं मान्त्रिकपदेन मन्त्रशास्त्रज्ञस्तत्विचारकर्त्ता वा राजयोगवशादमा-त्यत्वं वा । वक्ष्यमाणविधिना चालितः सन् रविर्यदा गोचरे त्रिकेशेन शुक्रेण च युक्तः, त्रिके वा गच्छति तदा चक्षुर्विकारमुपचक्षवादि-धारणादिकं वा विदधाति, इति ज्ञेयम् ॥ एतत् सर्वं पितृराजपा-लकादिकं दशमेशदशमभावादिसकाशाच्चावलोकनीयामिति । अत्र प्रमाणानि प्राचीनाचार्यरचितग्रन्थादौ द्रष्टव्यानि ग्रन्थगौरवभया-न्नात्र लिखितानीति ।

माणिक्यगोधूमसुवर्णताम्रपाषाणसिन्दूरतृणानि पुंस्त्वम् ।
आयुर्वेदेत् कम्बलतिक्तपित्तवृद्धाऽस्थिवेदास्त्रधराश्च सत्वम् २०

माणिक्येति—सूर्ये शुभषड्वर्गगते शुद्धं माणिक्यं । सूर्ये शुक्रां-शगते गोधूमस्य व्यापारवान्, बुधांशगते सौवर्णं, भौमांशगते ताम्रं

बुधदृष्टे युक्ते षड्वर्गादौ जीवबुधयोर्वर्गे प्राप्ते सुवर्णयुक्तं ताम्रं, चन्द्रेणैतादृशसम्बन्धे पापाणं, केवलेन भौमेन भूराशिषड्वर्गगते भौमदृष्टे सिंदूरम्, सूर्यांशे तृणम्, सूर्ये मेषादिद्वादशभागगे तादृश-जीवनिर्मितकम्बलं, सूर्यांशे चतुर्थाधिपतौ तिक्तं, सूर्ये षष्ठस्थे षष्ठेश-युते वा पित्तविकारः, सूर्यो लग्नेशो लग्नं लग्नेशं वा पश्यति चेत् वृद्धः, लग्नेशे सूर्यांशकगतेऽपि तथा तदाकारो वा, सूर्यो यद्भावगतः स्यात् तद्भावगताङ्गस्यास्थि ज्ञेयम्। तत्र कस्य जीवस्यास्थीनीत्यत्र विशेषः,

सूर्ये शुक्रे शुभांशस्थे चाश्वस्यास्थि वदेद् बुधः ।
मन्देनैव खरः प्रोक्तो बुधजीवे नरस्तथा ॥
चन्द्रे भृगौ तथा नारी जीवे मातङ्गजा मता ।
चन्द्रे गौर्गवयश्चैव भौमे छागकुलोद्भवा ॥
पक्षिद्रेष्काणगे तेषां सर्पगे सर्पजातिगा ।
षड्वर्गभेदतः सर्वं नानाजातिगता पुनरिति ॥

चतुर्थाधिपतौ सूर्यांशगते सूर्येण वा दृष्टे सति वेदास्त्रा भूमिरिति॥

अन्तःसारा वृक्षाश्चाश्वाः पशवश्च रक्ताभाः ।
खगाश्च सर्वे रक्ताः क्षात्राः सौवर्णकारकाद्याश्च ॥२१॥

अन्तःसाराइति—अन्तःसाराः श्रीपर्ण्यादयः। अश्वाद्याः पशवो रक्ता आभा येषां ते । खगा द्विजास्ते रक्ताः रक्तवर्णाः । क्षात्राः क्षत्रियवर्णाः क्षात्रस्वभावाः पुरुषाः, सुवर्णकारका एतेषां विचारो-ऽपि सूर्यादेव ॥ उक्तञ्च बृहज्जातके—

पापा बलिनः स्वभागगाः पारक्ये विबलाश्च शोभनाः ॥
लग्नं च वियोनिसंज्ञकं दृष्ट्वात्रापि वियोनिमादिशेत् ॥

पुनश्च—

लग्नांशकाद् ग्रहयोगेक्षणाद्वा वर्णान् वदेत् बलयुक्ताद्वियोनौ ।
दृष्ट्या समानान् प्रवदेत् स्वसंख्यया रेखां वदेत् स्मरसंस्थैश्च पृष्ठे॥

सारावल्याम्-

बलदीप्तो गगनचरः करोति वर्णं वियोनीनाम् ।
पीतं करोति जीवः शशी सितं भार्गवो विचित्रश्च ॥
रक्तौ दिनकररुधिरौ रविजः कृष्णं बुधः शबलम् ।
स्वे राशौ परभागे परराशौ स्वे नवांशके तिष्ठन् ॥
पश्यन् ग्रहो विलग्नं स्ववर्णवर्णं तदा कुरुते ।

पुनश्च—

खगे दृक्काणे बलसंयुतेन वा ग्रहेण युक्ते चरभांशकोदये ।
बुधांशके वा विहगाः स्थलांबुजाः शनैश्चरेन्द्वीक्षणयोगसम्भवाः ॥
पुनरपि पक्षिद्रेष्काणानि यथा—कुम्भहरी प्रथमौ द्रेष्काणौ मिथुनतुले मध्यमगे च खगाः ॥

होरेन्दुसूरिरविभिर्विबलैस्तरूणाम् तोयस्थले तरुभवोंशकृतप्रभेदः ।
लग्नाद्ग्रहःस्थलजलर्क्षपतिस्तुयावांस्तावन्त एव तरवःस्थलतोयजाताः॥

सारावल्यामपि-

लग्नार्कजीवचन्द्रैरबलैः शेषैश्च मूलयोनिः स्यात् ।
स्थलजलनवमविभागा वृक्षादीनां प्रभेदकराः ॥
स्थलजलग्रहयोर्लग्नाद्यावति राशौ तु तेऽपि तावन्तः ।
द्वित्रिगुणत्वं तेषामायुर्दायप्रकारोक्तम् ॥

स्वर्णकारोरविर्भूमिजो नीचगो स्वोच्चभस्थादिगः क्षत्रिया वै नरा इति ॥

यशोदयामनोमृगाङ्ककान्तिदन्तशीलताः ।
सुशौक्तिमौक्तिकादयः सुधाभ्रकौषधादयः ॥
सुजीरकौदनोदयाश्च राजतं निशाकरात् ।
सुरक्तहंसदृष्टिगोपयः सुगान्धि सुन्दरम् ॥२२॥

सुनीरनारिनारिकेलशाकवल्लिकल्पनोद्-
भवांश्च यन्त्रकादिकान् हि दुग्धजाँश्च नीरजान् ॥
स्वमातृकाच्छपुष्पजर्मनाख्यसिल्वरादिकान् ।
विधोर्विचिन्तयेत् नृपस्य धर्म्मपत्निकास्सदा ॥ २ ३॥

यश इति सुनीरेति च—यशोदयादीनां कारकश्चन्द्रः ॥ यशः-प्राप्तिस्थानं नवमं तस्मिन् भावे चन्द्रमसि शुभषड्वर्गगते शुभग्रहालोकिते पूर्णयशस्वी नरः स्यात् ॥ एवं चतुर्थे दयावान्, उच्चादिगते तस्य तादृगेव मनः, दशमैकादशगते चन्द्रे शुभालोकिते बुधषड्वर्गादि सहिते च रजतमृगाङ्कजर्मनोद्भवादिकल्पितधातुविक्रेता संग्रहकर्त्ता वा ॥ स्वोच्चगते चन्द्रे नीचस्थग्रहवर्गादिगते चालोकिते जर्मनसिल्वरादिकल्पितधातुव्यवसायी, दरिद्रयोगादौ प्रस्फुटितभाण्डव्यवसायवान्, आकरस्थकार्यकर्त्ता वा ॥ परन्तु वृषषड्वर्गगते स्वोच्चस्थशुक्रेणावलोकिते दशमद्वितीयतृतीयगतेऽपि शौक्तिकमौक्तिकसंग्रहकर्त्ता भोक्ता वा ॥

एवं मध्ये नीचोच्चादिवर्गभेदवशात भौमसूर्याद्यवलोकिते मृगांकादिभाँडनिर्माणकर्त्ता स्यात उत्तममध्यमाधमादिकंबूलभेदविशेषवत् । सुखेशस्य वर्गे सप्तमस्थे चन्द्रेऽधोदन्तपंक्तौ, लग्नस्थे चोर्ध्वपंक्तौ शुभपापदृष्टियोगाद्विकारादि योगायोगवान् । तथा च यत्र कुत्रापि स्थिते चन्द्रे लग्नद्यूनेशसम्बन्धे पापदृग्युते चोक्तविधिना दन्तविकारवान् । द्वितीयैकादशगते चन्द्रे मुखस्य कान्त्यादि ॥ चतुर्थगते वा तत्संबंधिनि, नृपयोगे अभ्रकाद्याकरवान् । वैद्ययोगे अभ्रकाद्यौषधनिर्माणकर्त्ता तद्व्यवसायवान् वा । रविभौमषड्वर्गस्थे सुधानिर्माणकर्ता गृहादिनिर्माता । शुक्रषड्वर्गस्थे तंदुलादिधान्योत्पादनव्यवसायपाकादिकृत् । शुक्रे सुखे मंदादि-

षड्वर्गगते जीरकाद्युत्पादनव्यवसायादिकृद्धोक्ता वा । भौमावलोकिते षष्ठेशत्वं प्राप्ते वा भौमषड्वर्गगते रुधिरादिविकारवान् । उत्तमाधिकारिबुधषड्वर्गगते चन्द्रे हंसादिश्वेतपक्षिणः । त्रिकेशषड्वर्गगते दृष्टिविकारादयः । सुखेशषष्ठेशयोर्वर्गे गोप्रभृतयः । शनिशुक्रवर्गे रविभौमदृष्टे सौगन्धिकः । जीववर्गगते चतुर्थस्थे जीवदृष्टे वा नारिकेलादिव्यवसायकोत्पादकभक्षकाः । द्वितीयसप्तमगते भृगुगुरुवर्गस्थे नार्यादिविचारः । चतुर्थद्वितीयपञ्चमदशमैकादशभावस्वामिनां रविबुधभृगुगुरूणां वर्गे तद्युक्ते वा चन्द्रे काल्पनिकशाकवल्लीफलपुष्पादिनिर्माणकर्त्ता ॥ रव्यादिषड्वर्गस्थे रवियुते वा प्रोक्तग्रहधातुजन्ययन्त्रनिर्माणादिकर्त्ता । जलराशिस्थे वृक्षविभागस्थे नीरजवृक्षोत्पादकः । स्थलराशिस्थे पिप्पलादयः । सूर्यादिग्रहसंयोगात् बहुविधमंदारपिप्पलनिम्बन्यग्रोधजन्तुवृक्षादिः । भौमादनुपचयस्थे चन्द्रे जीवादिषड्वर्गप्राप्ते दशवर्षोत्तरं स्वच्छपुष्पस्य रजोधर्मादेर्विचारः । राजपत्निस्वमातृकयोरापि चन्द्रात् विचारः कर्त्तव्यः ॥

वायुदिङ्मित्रमार्गाश्च कार्पासं वैश्यतां तथा ।
नष्टं धरागतनिधिं मृत्युं रात्रिपतेर्विदुः ॥२४॥

वायुदिगिति । वायुदिग्–उत्तरपश्चिमयोर्मध्यवर्त्तिनी दिग् तस्याः बलवतिचन्द्रे कस्मिन्नपि स्थाने गते तत्र द्वारचौरनिधिप्रभृतीनां विचारः कर्त्तव्यः । मित्रसम्बन्धिविचारश्च पूर्वोक्तक्रमेण चन्द्रे पुरुषनवमांशे पुंग्रहदृष्टे पुरुषमित्रेण सह स्नेहादिः अन्यथा स्त्रिया सह । नीचोच्चस्थिरचरशुभाशुभमित्रशत्र्वादिसम्बन्धवशात् क्षेत्रादिविशेषसम्बन्धबलेन च मित्रस्यापि तथात्वम् ज्ञेयम् । पापिना सह सम्बन्धे सति छलवता मित्रेण धननाशादिविचारः कार्यः । भौमसप्तमेशादिसम्बन्धात् मार्गविचारः । तथा तृतीयचतुर्थपंचमसप्तमदशमैकादशस्थे चन्द्रे

तत्तद्भावेशसंबद्धे तृतीयषष्ठाष्टमैकादशस्थबुधेन संबद्धे बुधक्षेत्रगते वा व्यापारवान् भवति । दशमे जलराशिस्थे दशमेशसम्बद्धे वा चन्द्रे सामुद्रिकव्यापारवान् । क्षेत्रादिभेदात् ग्रहविशेषयोगाच्च तत्तद्वर्ण-वद्वस्तुव्यापारवान् । सूर्येण योगात् शणोर्णादिवृत्तिशीलः । केवले-नेतरग्रहयोगरहितेनेन्दुना कार्पासवस्त्रादिजीवी । तथा भौमयोगात् कीटजवस्तुव्यापारवान् । बुधगुरुसंबन्धात् सुवर्णतन्तुग्रथितचित्र-वस्त्रव्यापारवान् । शुक्रेण युक्ते पुष्पोद्भवद्रव्यमसृणक्षौमवस्त्रादि-व्यापारवान् । तथा शनिसंबन्धेन मिश्रितवस्तुवृत्तिशीलः । तत्र व्यापारसम्बन्धिद्रव्यवर्णविचारे तत्तद्राशिग्रहादियोगजवर्णवद्वस्तु-व्यापारवत्ता ज्ञेया। कार्पासं कार्पासोद्भववस्त्रादिकं तत्क्रयविक्रयौ च चन्द्रादेव । वैश्यजातिकारकत्वात् व्यवसायिनां तस्मादेव ज्ञानम् ॥

लग्नसप्तमाष्टमलाभधनतृतीयचतुर्थगते पूर्णे चन्द्रे नष्टद्रव्य-प्राप्तिर्भवति । पापग्रहदृष्टे क्षीणे चन्द्रे न किञ्चिदपि लाभः ॥ उक्तं च षट्पंचाशिकायां—"होरास्थितः पूर्णतनुः शशांको जीवेन दृष्टो यदि वा सितेन । क्षिप्रं प्रणष्टस्य करोति लब्धिं लाभोपयातो बलवान् शुभश्च"॥ अन्यत्रापि—"धनलाभस्य प्रश्ने लग्नेशेनेंदुनाथ धननाथाः । कुरुते यदीत्थशालं शुभयुतिदृग्भ्यां भवेल्लाभः ॥ चन्द्रलग्नधनाधीशा दृष्टा युक्ताः परस्परम् । धनकेन्द्रत्रिकोणस्थाः सद्यो लाभकराःस्मृताः॥ चतुर्थे सप्तमे चन्द्रे खे रवौ लग्नगे शुभे । प्रष्टुः सद्योऽर्थलाभः स्यात् लग्ने वा सुरमन्त्रिणि ॥ दूरगतस्यागमनं सुतधनसहजास्थितैर्ग्रहैर्लग्नात् । सौम्यैर्नष्टप्राप्तिं लब्धागमनं गुरुसिताभ्याम् ॥ लग्नपतीन्दुचतुर्थं यदि मुथशिलस्तदा गृहागमनम् । प्रष्टुः पृथ्वीलाभो शुभेन सौख्यात् धरागतं चापि" इति ॥ लग्नाच्चतुर्थे चन्द्रे धनचतुर्थभाग्य-दशमैकादशभावस्वामिना सहिते लग्नेशेन दृष्टे युक्ते शुभैर्युक्ते दृष्टे निखातद्रव्यस्य चाकस्मात् प्राप्तिः ।

यथा—"तुरीयभवनस्थितौ तनुपतिक्षपानायकौ शुभग्रहयुतेक्षितौ सुखपतिर्यदा लग्नगः। तदैव नवमन्दिराक्षितिनिखातवित्तागमः सुखाधिपदशागमे तनुभृतामनायासतः" ॥ जन्मवर्षप्रश्नलग्नात् क्षीणे चन्द्रे त्रिकलग्नचतुर्थधर्मादिभावगते पापैरवलोकितेऽरिष्टं भवति विपरीते शुभम् ॥

लग्नेशेन्द्वोः सौम्येत्थशालतो रोगनाशनं वाच्यम् । वक्रे तत्र खेटे भूयोऽपि गदः समुपयाति यथा—"शूलोद्भिन्नतनुः सुखेऽवनिसुते सूर्योऽपि वा खे यमे सम्प्रक्षीणहिमांशुभिश्च युगपत् पापैस्त्रिकोणोपगैः। बन्धुस्थे च रवौ वियत्यवनिजे क्षीणेन्दुसंवीक्षिते काष्ठेनाभिहतः प्रयाति मरणं सूर्यात्मजेनेक्षिते ॥ रन्ध्रास्पदाङ्गहिबुकैर्लगुडाहताङ्गः प्रक्षीणचन्द्ररुधिरार्किदिनेशयुक्तैः । तैरेव कर्मनवमोदयपुत्रसंस्थैर्धूमाग्निबन्धनशरीरनिकुट्टनान्तः॥ पापावुदयास्तगतौ क्रूरेण युतश्च शशी। दृष्टश्च शुभैर्न यदा मृत्युश्च भवेदचिरात् ॥ क्षीणे हिमगौ व्ययगे पापैरुदयाष्टमगैः । केन्द्रेषु शुभाश्च न चेत् क्षिप्रं निधनं प्रवदेत् ॥ क्रूरेण संयुतः शशी स्मरान्त्यमृत्युलग्नगः। कण्टकाद् बहिः शुभैरवीक्षितश्च मृत्युदः"॥ अलमतिविस्तरेण विशेषस्तु ग्रन्थान्तरेषु द्रष्टव्यः। "लग्नादष्टमवर्त्यपि गुरुबुधशुक्रद्रेकाणगश्चन्द्रः । मृत्युं प्राप्तमपि नरं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ॥ चन्द्रः सम्पूर्णतनुः सौम्यर्क्षगतः शुभेक्षितश्चापि । प्रकरोति रिष्टभङ्गं विशेषतः शुक्रसंदृष्टः ॥ चन्द्राध्यासितराशेराधिपः केन्द्रे शुभग्रहो वापि । प्रशमयति रिष्टयोगं पापानि यथा हरिस्मरणम्" ॥ इति चन्द्र विचारः ॥

सैनापत्यं दण्डनेतृत्वयुद्धे चाग्नेयास्त्रं खड्गशक्त्यायुधानि ।
वीणा धैर्यं कोपकामारिमार्गान् दाहं वैद्युद्वह्नितेजाबतश्च॥ २५॥

सैनापत्यमिति । षष्ठस्थे भौमे राजयोगदासयोगद्वये प्राप्ते स्वोचादिस्थानबले प्राप्ते च सैनापत्यं चतुर्विधसेनामध्ये स्वामित्वं

प्राप्नोति । दशमेशतामुपगते तथा दशमेशेन सकाशाद् बलवति भौमे दण्डनेतृत्वं लभते । सूर्यचन्द्रयोः संयोगात् तयोः षड्वर्गगते धनचतुर्थदशमैकादशवर्गस्थे स्वनीचादिगते वा गुरुणा बुधेन शनिना युक्ते दृष्टे वा उद्यतायुधद्रेष्काणे आग्नेयास्त्रखड्गशक्त्याद्यायुधधारणकर्त्ता निर्माता व्यवसायवान् वा भवति । स्वोच्चाधिकारिबुधगुरुभ्यां सहितो युक्तस्तृतीयपञ्चमसप्तमभावस्थो वीणादिवाद्यरतान् गायकादीन् जनयति । हीनबलिशनिबुधयोगसहिते भौमे तात्कालिकचन्द्रयुक्ते च हीनबलिमंदादेकादशस्थशुक्रसौम्ययुक्ते भौमे कामारिः कामावरोधकः स्यात् । चरविभागे स्वस्वामिना दृष्टे युक्ते सप्तमनवमतृतीयादिभावगते मार्गे दूरदेशादिभ्रमणं, तत्र भावभावेशगुणविशेषात् व्यापारतीर्थादिप्रयोजनविशेषेणाटनम्, नीचादिगते राहुणाष्टमेशेन संबद्धेऽष्टमभावषड्वर्गस्थे वृथाटनम् । जलचरराशिगतो दुष्टस्थानाधिपयोगकृद्भौमो रविणालोकितश्चेत् तेजाबादिद्रवद्रव्यजनितो दाहो जायते, एतद्योगकाले मृत्युयोगेऽपि संप्राप्ते स्वयं तेजाबादिकं पिबति, इतरेण कारितं वा तत्पानं जायते । शुष्कराशौ रवियुतो रविवर्गस्थो वा भौमः पापदृष्टश्चेत् विद्युद्दाहयोगकृद् भवति । स्थिरराशिगो भौमः सूर्यदृष्टश्चेत् वन्हिदाहजनको भवति ।

ख्यातिं विजयपराक्रमरुधिरं गोधूममज्जाद्यान् ।
ताम्रं प्रवालगैरिककण्टकवृक्षांश्च शैलाद्यान् ॥ २६ ॥

व्यंगपित्ते युवा धात्रिभूचुल्लिकाभातृचिन्ता
तृषानृण्यतापादिकम् ।
मल्लवन्यान्नरौँस्त्र्यस्त्रदग्धावनीस्वेदकौ-
शल्यकण्ठांश्च भौमाद् व्रणम् ॥ २७ ॥

ख्यातिमिति । दशमेश्वरेण मित्रदृशा दृष्टे ख्यातिवान् । सूर्यादुपचयस्थे शुभदृष्टे भौमे विजयी, चरराशौ चरांशस्थे शुभेन दृष्टे लग्नादुपचयस्थे तृतीयदशमेशाभ्यां सहिते भौमे पराक्रमी भवति । चन्द्रशनिदृष्टो भौमोऽसृग्विकारं जनयति । चन्द्रशुक्र षड्वर्गस्थे भौमे उत्तममध्यमाधममिश्रग्रहयोगभेदवशेन तादृश गोधूमोत्पादकः तद्व्यापारवान् वा भवति । गुरुसंबन्धकृत् षष्ठेशः कुजो मज्जाधातुगतविकारजनकः । रविषड्वर्गस्थो भौमस्ताम्रं, गुरुवर्गस्थश्चन्द्रदृष्टः प्रवालं, स्ववर्गस्थः शनिराह्वन्यतरयोगकृत् भौमो गैरिकमुत्पादयाति । वन्यांशगतो भौमः कण्टकिनो निम्बादींश्च तरून् जनयाति । कुंभादिवन्यराशिस्थेन सूर्यावलोकितेन शनियुक्तेनारेण शैलचारी । लग्नेशस्यारिः सन् भौमो लघुराशिस्थः पापदृष्टश्चे ल्लग्नेशोऽपि तादृशश्चेत् विकलः खर्वो वा जायते । चतुर्थपंचमसप्तमेशो भौमः पापदृष्टो जलराशिस्थश्चेन्मन्दाग्निरन्यथा दीप्तपित्तो भवति । भौमस्य युवग्रहत्वात् चौरादिप्रश्ने तत्सम्बन्धे चोरादेरपि युवादिवयःकल्पनम् । चन्द्रात्तुरीयस्थे चतुर्थात्तुरीयभावस्थे वा भौमे तथा चतुर्थभावे पापदृष्टे सति जनन्यां मृतायामथवा शुभयोगसहिते सति जीवत्यां जनन्यामपि

तथा मिश्रितैः शुभपापग्रहैर्युक्ते दृष्टे वा जननीस्तन्याभावाद् धात्रीपयःपानसंवर्धितो भवाति । चतुर्थेशो यादृशराशिस्थो यन्नवांशस्थितो बलवता भौमेन दृष्टो भवति तादृशी भूमिर्भवति यथा—कन्यालग्ने चतुर्थेशो गुरुर्मिथुनराशौ २२ द्वाविंशत्यंशे स्थितोऽस्ति भौमस्तं पश्यति, अथवा कर्कराशिगतो भौमो बुधो मीनराशिस्थ श्चेदग्निशकटविश्रान्तिस्थानसमीपस्थग्राम्यभूरिव भूमिः स्यात् यतस्तत्र चतुर्थेशाधीशो बुधो नीचगतःअंशाधिपश्च भौमो नीचस्थस्तथा चतुर्थेशो गुरू राज्यभावे उच्चाभिलाष्यस्ति, अतो मेषराशिनिवासभूरिव हीना

जानपदी भूमिर्भवितुमर्हति । यद्ययमेव भौमो धनराशिस्थः स्याद्बुधः सिंहराशौ स्यात्तर्हि नगरप्रान्तस्था तादृशी भूमिः स्यात् । अस्मिन्नेव योगे भौमो यदि कुंभराशिगतः स्यात्तदा सैन्यनिवासपार्श्वगता भूमिः स्यादेवं भौमश्चतुर्थेशसम्बन्धेन भूमिकारको भवति । भौमो यस्यां दिशि स्यात्तत्रैव राशिक्रमेण चुल्ल्यग्निकार्यं वा वाच्यम् । भौमात्तृतीयस्थे पापे नवमस्थे वा कुजे, सतृतीयेशे त्रिकस्थे वा भौमे सति राशिवर्गक्रमेण भ्रातृजं दुःखं, विपरीते तु सुखं वाच्यम् भौमदृष्टियुतश्चतुर्थेशश्चन्द्रसंबन्धवान् भवेत् चन्द्रं वा कुजः पश्यति चेज्जातश्चिन्तातुरो भवति । तात्कालिकेन्दुर्यदा भौमेन योगं करोति तदा तृषार्तो भवति । शुभक्षेत्रस्थो भौमः शुभदृष्टश्चेदचिरादेव ऋण-मुक्तो भवति । तथा त्रिकेशसहितो नीचस्थः त्रिकस्थो वा कुजो ऋणवृद्धिकरो भवति । षष्ठेशेन योगकृत् रविषड्वर्गस्थो भौमो ज्वरार्तिकृत् । बुधयुतो भौमो बलप्रमाणेन मल्लत्वकरः । वनचर राशिस्थस्तन्नवांशगतो वा भौमो बलाबलवशेन वन्यान् वन-प्रियाञ्जनान् करोति । चतुर्थेशो भौमसम्बन्धेन त्रिकोणां भूमिं विदधाति । शनिसूर्ययुतो नीचस्थः कुजः पितृभूमिं करोति । चन्द्रबुधशुक्राणामन्यतमस्य षड्वर्गस्थो भौमः शरीरे स्वेदजनक-स्तथा स्वान्तर्दशायामपि भौमः स्वेदाधिक्यं जनयति । कस्यापि मारकग्रहस्यान्तर्दशायां भौमसूक्ष्मान्तरे शीतः स्वेदो जायते । बुध-वर्गस्थो गुरुदृष्टो भौमः कुशलतरं मनुजं विधत्ते । दुष्टो भौमो बुधस्य स्वस्य वा वर्गस्थितः षष्ठेशयोगकरश्चेत् व्रणञ्जनयति, पापदृष्टश्चे-त्तथाविधो महाव्रणं नासूराख्यं विदधाति । कुजो गुरुणा दृष्ट श्चेत् पटुर्भवति ।

मिथ्यावादं चौर्य्यं प्रमेहपाते च दम्पतेर्भङ्गम् ।
शस्त्राघातं भिषजः षण्मुखभक्तिं तथा कुजाद्धिधनम् ॥ २८ ॥

मिथ्येति ॥ व्यये व्ययेशवर्गे वा स्थितो भौमश्चेत् मिथ्याभाषी भवति । अष्टमेशेन भौमो धने तुरीयभावे वा स्याचत्र जातश्चौरो भवति । षष्ठस्वामिषड्वर्गस्थितो भौमः शुक्रेण सह योगं करोति चेत्तदा प्रमेहविकारं करोति । लग्नद्वितीयतुरीयसप्तमाष्टमरिःफस्थितो भौमश्चेत् स्त्रिया पुरुषस्य पुरुषेण स्त्रियो वा हानिर्जायते । अष्टमेशषष्ठेशान्यतरयोगकृद्भौमो लग्नेशं लग्नं वा शत्रुदृशा पश्यति चेत् शस्त्राघातं जनयति । दशमलग्नचतुर्थेशषड्वर्गस्थितो भौमो लग्नेशस्य मित्रं चेत्तर्हि शरीरे व्रणादिवशात् साधारणी शस्त्रक्रिया क्रियतेऽन्यथा महती शस्त्रक्रिया भवति । तत्र सूर्येण शिरसि, भौमेन कंठे, चन्द्रेण कपोले, बुधेन हृदये, गुरुणा नाभौ, शुक्रेण नेत्रे पृष्ठे वा, शनिना पादयोः । तथा द्रेष्काणविभागवशेनाष्टमेशयोगकृति वा कुजेऽवश्यमेव शस्त्रक्रियायोगो भवति । भौम आत्मकारकोऽमात्यकारको वा भूत्वा स्त्रीराशिस्थश्चेत्तर्हि दुर्गाभक्तो भवति किंवाऽयुधधारिणीस्त्रीदेवताभक्तः । भौमो यद्राशिस्थः स्यात्तदीशस्तन्नवांशेशो वा शनिषड्वर्गस्थितः स्यात्तदा कालिकाभक्तः । तादृशो वा भौमो गुरुषड्वर्गस्थस्ताराभक्तं करोति, अथवा शुक्रवर्गस्थश्चेल्लक्ष्मीभक्तम्, चन्द्रवर्गस्थो गौरीभक्तम्, बुधवर्गस्थः सरस्वतीभक्तं, सूर्यवर्गस्थो गायत्रीभक्तं करोति । यदि भौमाक्रान्तराशीशो नवांशेशो वा पुंराशिस्थितश्चेत्तदा बटुकस्कन्दादिपुंदेवोपासको भवति । अत्रापि राशिवर्गग्रहसंबन्धभेदवशादनेकविधत्वम् ज्ञेयम् । भौमो धनेशस्य सुहृद्भूत्वा धनेशवर्गे स्थितो वली चेत् स्वसंबंधिपदार्थवन्तं धनिनं करोति ॥ इति भौमफलम् ॥

धनसमागमहेमसुसंचको निपुणताहरिभाक्तिसुमित्रताः ।
मरकतं शिशुशूद्रविमुद्गका हरितजीवसुवर्तुलभूर्बुधात् २९

धनेति ॥ बली बुधो अष्टमभाग्यराज्यलाभचतुर्थतृतीयद्वितीय-

भावस्थः तद्भाववर्गस्थश्चेदगुरुतरधनसमागमकरः । धनेशो बुधन-वांशस्थो, धनेशो बुधो वा चेत् तदा स्वर्णधनं भवति । बुधो द्वादशे चेत् सुतरां संचयकर्ता । सूर्ययुतो बुधो नैपुण्यं जनयति सर्वकार्येषु कुशलतां करोतीतिभावः । सप्तपाष्टपधर्मस्थो बुधोऽमात्यकारको आत्मकारको वा भवति एतादृशे योगे जातो विष्णुभक्तो भवति । तादृशो बुधो जीवांशस्थश्चेन्मृत्युंजयभक्तं, भान्वंशगो नारायणभक्तं श्रीरामभक्तं वा करोति । भौमांशगस्तादृशो बुधो नृसिंहस्य, शुक्रांशस्थो लक्ष्म्याश्चन्द्रांशस्थः श्रीकृष्णस्य भक्ताञ्जनयति । यद्युपर्युक्ता ग्रहास्तदा स्वोच्चादिस्थिताः स्युर्बुधश्च सौम्यदृष्टश्चेत्परमभक्तः तथा नीचाद्यंशस्थश्चरस्थो वा चेत्तदा कारणभक्तो भवति । राहुसम्बन्धात् विश्वक्सेनादिसामान्यावताराभक्तो भवति । स्वांशस्थो बुधो बली चेन्मरकतमणिकारको भवति । तथा बालकशूद्रपक्षिणां विचारोऽपि बुधादेव कार्यः । शुक्रांशे स्थितो बुधः प्रवालकरः, चन्द्रादिसम्बन्धेन वृक्षान्नाद्युत्पादकव्यवसायिनः करोति । राशिभेदविभेदवशादबुधो नानाजीतायान् हरिद्वर्णान् करोति । बुधो लग्ने स्थितश्चेल्लग्नेशेन सहितो वा लग्नं पश्यति चेज्जीवं करोति । चतुर्थेशसम्बन्धकृदबुधो मृद्भाण्डादिवत् वर्तुलान् पदार्थान् करोति ॥

बुद्धिज्ञातिनरेन्द्रपुत्रहृदयं प्रेतस्य बाधां दृढं ।
तर्कव्याकरणादिशास्त्रमथनं ज्योतिर्विदं पत्तनम् ॥
वाद्यक्लीबसुनृत्यरंगरचनां नानाकलां लेखिनीं ।
शिल्पज्ञानसुखानि रश्मितरवः क्रीडास्थलं वाग्बुधात् ॥३०॥

बुद्धिज्ञातीति ॥ चरराशिषड्वर्गस्थितो बुधः, लग्नाद्द्वितीय तृतीयचतुर्थपंचमाष्टमनवमदशमैकादशे स्थितो गुरुणा स्वोच्चस्थग्रहैर्दृष्टः

शीर्षोदयराशौ स्थितश्चेन्नरोऽत्यन्तं बुद्धिमान् भवति । अन्यथा पृष्ठोदयराशिस्थो भौमयुग्दृष्टो वा स्यात्तदा बुद्धिविहीनो, मिश्रग्रहैर्दृष्टो युक्तो वा चेत्तर्हि कदाचिद्बुद्धिमान् कदाचिद्बुद्धिरहितः सन् कार्यं करोति । बुधो लग्नेशस्य सुहृच्चेन्नरो ज्ञातिमान्यो भवति, अन्यथा तदपमानितो भवति । सभौमः स्वनीचस्थो बुधो नीचगैर्ग्रहैरवलोकितश्चेत् ज्ञातिबहिष्कृतो भवति । राजपुत्रसंबन्धिप्रश्नलग्ने तात्कालिको बुधो यादृशः स्यात्तादृशराजपुत्रस्य विचारः पृच्छकहृदि वर्तते । षष्ठाष्टमेशयोगकृद्बुधः चतुर्थभावे पापयुतो दृष्टो वा इत्थशालं करोति चेत्तदा हृदि विकारं विदधाति । तथाच षष्ठाष्टमभावस्थितो बुधः चतुर्थेशेन सह योगं करोति तदापि प्रोक्तफलं करोति । भौमसूर्ययोगाद्व्रणं, शनिराहुभ्यां श्वासविकारान् जनयति । केवलेन षष्ठेशेन योगकरो बुधः हृदि व्यग्रतां भाषायां हौलदिलीतिनामानं विकारं करोति । बुधेन सम्बन्धकारकग्रहेभ्यो हृद्गांभीर्यस्य क्षुद्रतायाश्चापि विवेकः कार्यः । षष्ठेशो बुधः पापैर्दृष्टः स्याद्बुधात् षष्ठे शनिराहू वा भवेतां, चन्द्रश्च नीचगः स्याद्बुधः पृष्ठोदयगतश्चरादिभागगश्चेत्तदा नवमांशाधिपसमशीलसंख्यावतां दृष्टृग्रहतुल्यस्वभावसंख्यावतां प्रेतानां बाधां जनयति । लग्नेशसम्बन्धकृल्लग्नस्थो बुधश्चेत्तदा हठी भवति । तथाविधो बुधः स्थिरर्क्षे पापदृष्टश्चेत्तर्हि नरो जन्मप्रभृति नीचकार्ये हठकारी भवति । अन्यथा शुभकार्ये हठी भवति । गुरुभौमसंदृष्टो बुधः शीर्षोदये चरराशिगतः स्यात्तदा तस्मिन् योगे जातस्तार्किको भवति । तथा गुरुचन्द्रयोगाद्वैय्याकरणो भवति । सूर्यगुरुयुक्तो बुधो वेदान्ते नैपुण्यं विदधाति । रविसौरिविधुगुरुक्षेत्रस्थो बुधः तैरेव युग्दृष्टो वा चेत्तदा संजातो योगी भवति । स्वक्षेत्रस्थो बुधः गुरुभौमशुक्रैः सम्बन्धं करोति तदा जातः कापिले शास्त्रे

निपुणो भवति । निखिलैर्ग्रहैरनादृशो बुधो योगकृच्चेज्ज्यौतिषे निपुणो भवति । नवमस्थगुरुराहुभ्यां योगकृद्बुधो नास्तिकशास्त्रज्ञं करोति । गुरुशुक्रयोगकृत् शुक्रक्षेत्रादिगतो बुधः साहित्यज्ञं करोति । सूर्यगुरुभ्यां सम्बन्धकृद्बुधः पंचमे चेन्मन्त्रशास्त्रज्ञं विदधाति । उत्तमाधिकारवंतश्चन्द्रगुरुशनिभौमा बुधेनार्गलां कुर्वन्तो योगं वा कुर्वन्तश्चेत्तत्र जातो वैद्यो भवति । तात्कालिकपृच्छालग्ने चतुर्थेशेन योगकृत् स्थिरराशिस्थो बुधः केन्द्रे चेत्तदा नरः पत्तनस्थो वाच्यः । मिथुनकन्यास्थस्तन्नवांशस्थो वा बुधः तुरीयदशमैकादशभावस्थः गुरुशुक्रभौमैर्दृष्टो युतो वा चेत् अथवा भानुर्वृषराशिस्थश्चेत्तदा जातो नरो गानवाद्यकुशलो भवति । बुधः शनिदृष्टश्चेत् क्लीबो भवति । लग्नचन्द्रशुक्रास्त्रयोऽपि नृराशिस्थाश्चेत्तदापि क्लीबो भवति । उक्तो-भययोगसत्त्वे गानवाद्यरतः षंढो भवति । तुरीयेशो बुधो द्वितीय-भावे गतश्चेत्स्त्रीवद्विपरीतमैथुनशीलो भवति । वृषमिथुनकन्यातुला-राशिगतो रौहिणेयो गुरुणा तुरीयेशेनैकादशाधिपेन वा युतो वावलो-कितश्चेद्रंगरचनाचतुरश्चित्रकारो भवति ।

एतद्योगे यदि चन्द्रोऽपि उत्तमबली चेत्काव्यकुशलः सन् चित्रकारो भवति । बुधक्षेत्रगते सौरिदृष्टे सूर्ये चन्द्रे वा, तथा च शनिदृष्टिरहितो बुधो दशमेशो दशमभावगतो वा गुरुदृष्टः स्यात्तदा कुशलः शिल्पकारो भवति । तुरीयेशो बुधः लग्नेशस्य सुहृच्चेदथवा चतुर्थेशेन सहितः सन् बलवान् स्यात्तदा जातो सुखी भवति । चतुर्थेशस्य नवांशगतो बुधो यत्र कुत्रापि स्थितः स्यात् तदा च धनिकयोगे दरिद्रयोगे वा प्राप्तेऽपि जातोऽश्वादिवाहनरश्मिग्राही भवति । बुधो त्रिफलांस्तरून् जनयाति । बुधो लग्नाद्यत्र स्यात्तथा-यादृशे राशौ नवमांशे वा स्यात्तादृश एव तत्र बालानां क्रीड़नस्थानं वास्त्वन्तर्बहिर्वा वदेत् । बुधो बलहीनो वक्री वा भूत्वा त्रिकादिगतः

स्यादथवा तादृशैर्विबलैर्वक्रिभिरस्तिकैर्वा युतः स्यादथवा नीचस्थश्चेत्तदा योगभेदवशात्तद्द्राणीवक्ता भवति द्वितीयभावस्थो द्वितीयेशेन सह वा योगकृद्बुधो बलवान् चरादिराशिगतश्चेत्तदा प्रशस्तवाग्मी भवति ॥ इति बुधविचारः ॥

माधुर्यं हस्तियानं सचिवनरसुरान् नाभिदेशं च जीवान्,
वेदं वेदान्तधर्मं सुतधनचयनं यज्ञवेशं सभां च ।
वाणिज्यं धीवराणां मतिगतिरसनाबद्धकोष्ठं सुखानां
सर्वेषां वा विचारो गुरुगुणगरिमा ब्राह्मणं जीवतश्च ॥ ३१ ॥

माधुर्यमिति ॥ गुरुश्चतुर्थेशेन योगकृत् स्यादथवा चतुर्थेशस्य नवांशगतो द्वितीयभावगतश्चेत्तत्र जातो मिष्टभाषी मिष्टभुक् भवति । तदा यदि स गुरुः शुक्रबुधचन्द्रैर्युक् दृष्टो वा चेत्तर्हि किं प्रष्टव्यम् ! । दशमेशश्चतुर्थेशो वा गुरुरेकादशस्थश्चेदनायासतो गजवाहनं प्रयच्छति । सूर्यबुधौ पंचमस्था बुधो वा चतुर्थनवमदशमैकादशद्वितीयभावगतः स्याच्चन्द्र उत्तमाधिकारवान् स्याद् गुरुरपि बलयुत उपचयस्थितः स्यात्तदाऽवश्यमेव राजमन्त्री भवति । गुरोः पुरुषग्रहत्वादखिलेषु कार्येषु तस्मात् पुरुषसम्बन्धावगमस्तथा पुंलिङ्गविशिष्टपदार्थज्ञानं कार्यम् । गुरोः पंचमभावकारकत्वाद् जनुषि पृच्छाकाले वा तस्य इष्टानिष्टत्वात् नाभिस्थले सुखदुःखादिकं वाच्यम् । लग्नेशं, लग्नेशो यत्र नवांशे स्यात्तदधिपतिं वा गुरुः पश्यति चेज्जीवप्रश्नो वाच्यः । पंचमेशो गुरुः चतुर्थेऽथवाऽन्यत्रापि धर्मेशयुतो धर्मभावनवांशे वा स्यात्तदा जातः स्वशाखाध्यायी भवति । स्वशाखाध्ययनं तु द्विजेष्वेव संभवति तेषामेव वेदाध्ययनाधिकारवत्त्वात् । शूद्रादीनां तु उक्तयोगे पुराणाद्युत्तमेतिहासग्रन्थाध्ययनं वाच्यम् ॥ तथा च यवनादीनां स्वस्व-

निगमादेः कुरानबाइबिलादिरूपस्याध्ययनं ज्ञेयम् । तथाविधे गुरौ सति यदि शनिकृतः प्रव्रज्यायोगोऽपि स्यादथवा शनिर्धर्मे धर्मभावनवांशे वा चेत्तर्हि जातो वेदान्तशास्त्राध्ययनरुचिर्भवति । गुरुणा धर्मव्ययलाभेशा यादृशं योगं कुर्वन्ति तादृशा एव यजमानाचार्यर्त्विजो वाच्याः । सप्तमेशसहितो गुरुः सप्तमभावे लाभेशयुतः स्यादथवा दशमेशसहितो लाभेशषड्वर्गगतो यत्र कुत्रापि बलयुतस्त्रिकान्यभावस्थश्चेदुत्तमं वाणिज्यं करोति । धीमतां मतिगतिविचारोऽपि इष्टानिष्टगुरुबलात् ज्ञेयः । चरस्थिरवक्रोच्चादिराशिस्थितिभेदात् शुभाशुभग्रहदृष्टिवशाच्च रसनाया अखिलसुखानां महद्गुणानां ब्राह्मणज्ञातेश्च विचारो गुरोरेव कार्यः ॥

शिवार्चनं यज्ञशालां ब्राह्मणस्य गृहं च वै ।
सफलद्रुमान् दन्तभूषां गुरुतश्चावलोकयेत् ॥ ३२ ॥

शिवार्चनमिति—गुरुरन्यग्रहेभ्योंऽशादिविभागेऽधिकश्चेत्तथा चन्द्रेण रविणा युतो दृष्टो वा स्यात्तदा चरादिराशिभेदवशेन तादृशशिवोपासको भवति । राशिग्रहादिसंबन्धवशादुक्तप्रकारेण विष्णुकालिकालक्ष्मीश्रीविद्यासूर्यादिपुंस्त्रीदेवभक्तान् जनयति । गुरुर्लग्नात् यद्दिग्संबंधिभावे नवमेशो भूत्वा भौमेन सह स्थितः स्यात्तस्यां दिशि यज्ञशाला वाच्या । तथा विप्रस्य विप्रवृत्तिभृतां वा गृहं, सफला वृक्षाश्च तस्यामेव दिशि वाच्याः । आभूषणादिविचारे गजदन्तादि जटिताभूषणं गुरोर्ज्ञेयं । अत्र आदिपदेन रत्नयुतसुवर्णादिभूषण ग्रहणम् । आयतचतुरस्रादेः चिह्नस्य अन्नादेरपि विचारो गुरोरेव कर्तव्यः । इति गुरुविचारः ॥

पानं हीरककाचभेदरचना नृत्यं नवीनाङ्गनाः ।
संभोगः क्षितिपालमन्त्रिरजते धान्यं प्रमेहादिकं ॥

कल्याणं कमनीयतां मसृणता वस्त्रादि शुभ्रान् खगान् ।
पुष्पं वाजिवृषेन्द्रमन्त्रमदनान् काव्ये सदा चिन्तयेत्॥ ३ ३॥

पानमित्यादि—शुक्रः नीरादीनामामद्यानां पेयद्रव्याणां कारको ज्ञेयः। स यदा गोचरे चन्द्रनवांशे भौमनवांशे वा स्थितः सन् राहुणा सह लग्नाद्द्वितीयसप्तमनवमभावेषु गच्छति, अथवा लग्ने नवमे वा भौमक्षेत्रगतो बुधश्चेद्रविस्तुलाराशिस्थश्चेत्तदा जलवन्मद्यपानं करोति। धर्मषड्वर्गगतो धर्मेशसंबन्धयुतः शुक्रो गुरुणा दृष्टश्चेत्तर्हि वामादिसम्प्रदायसम्बन्धेन मद्यपानं करोति। पूर्वोक्तयोगे सति स्वांशे गुलिकश्चेत्तदाऽतिमद्यपी। दशमेशः शुक्रो यदि दशमे सप्तमभावे वा स्यात्तदा मद्यव्यवसायिनं विधत्ते। गुरुक्षेत्रस्थो गुरुदृष्टश्चन्द्र-नवांशे स्थितश्चेदच्छनीरपानं शर्करामिश्रितसुवासितनीरपानं वा करोति। सचन्द्रः शुक्रः षष्ठेऽष्टमे वा भावे स्थितः सन् शनि-भौमेक्षितश्चेत् क्वाथारिष्टादिपानं करोति। स्वोच्चक्षेत्रादिस्थो गुरु-चन्द्रेक्षितः शुक्रो यदि धनपातालधर्मायभावे स्थितः स्यात्तदा हीरकमणिव्यवसायी भवति। स एव यदि बलहीनग्रहवर्गगतश्चे-त्तदा स्फटिककाचमुकुरदीपाधारादिविविधकाचद्रव्याणां विक्रेता भवति। बुधनवांशस्थः शुक्रः शनिदृष्टः शनिक्षेत्रगतो वा चेत्तर्हि नृत्यकुशलो भवति। शुभावस्थावस्थितः शुक्रो हर्षितो गुरुदृष्टश्चे-त्तदोत्तमाङ्गनानामन्यथा शुक्रावस्थावशात्तादृशाङ्गनानां विचारः कार्यः। तत्र चरादिराशिस्वभाववलेन तासां स्वभावादिकं ज्ञेयं। शुक्रः यद्राशिनवांशे स्थितः स्यात्तद्बलाबलविवेकेन तथा संभोगो ज्ञेयः। तथैव राजमन्त्रीविचारोऽपि शुक्रादेव कर्तव्यः। विशेषतस्तु—शुक्रो यदा पंचमषष्ठान्यतरभावगतश्चेत्तर्हि विवेकयुक्तो भवति। भौमचतुर्थेशषड्वर्गगतः शुक्रो नवमदशैमकादशभावस्थश्चेत्तदा रजतविक्रेता भवति। धर्मदशमायान्यभावस्थितः शुक्रो सूर्येण सह

योगं करोति चेत्तदा रजतक्रयविक्रयकार्ये मध्यस्थो भवति । शुक्रो यदि चतुर्थभावे दशमे वा स्थितः शुभदृष्टश्चेत् चतुर्थेशः सबलो भूत्वा वनचरराशिषड्वर्गगतश्चेत् चन्द्रेण सह योगं करोति तर्हि धान्यक्षेत्रं ददाति, तन्दुलव्यवसायिनं वा करोति । लग्नेश-सप्तमेशत्रिकेशैः सम्बन्धकृत् शुक्रः पापयुतो दृष्टो वा चेत्तदा ग्रहभेदवशेन राशिगुणभेदवशेन च बहुविधान् प्रमेहान् जनयाति । तत्रापि राहुणा केतुना वा युक्तश्चेन्मूत्रकृच्छ्रं करोति, जलचरराशौ स्थितश्चेद्बहुपूत्रामयं करोति । शुक्रः शुभबलयुक्तश्चेन्नीरुग्भवति । लग्नद्वितीयसप्तमैकादशभावस्थितः शुक्रो शुभयोगकृच्चेत् कमनीयो भवति । सूर्यचन्द्रभौमबुधगुरुमन्दैर्योगकृच्छुक्रो दशमैकादशभावे स्थितश्चेदथवा रविचन्द्राभ्यां दशमे सप्तमेशनवांशगतः सन् स्थित-श्चेत् क्रमशः त्वक्कार्पासचर्मजलजवृक्षतन्तुसुवर्णालङ्कृतपट्टवस्त्र-मिश्रितवस्त्रमसृणवस्त्राणां व्यवसायवान् भवति, तत्रापि यदि तादृशः शुक्रश्चरराशिगतश्चेत्तर्हि विदेशोद्भववस्त्राणां विक्रेता भवति । बुधसौरिषड्वर्गस्थितस्ताभ्यामेवावलोकितश्चेत्तदा पक्षिसंबन्धी वि-चारः कार्यः । शुक्रो लग्नाद्यस्मिन्दिग्विभागे स्थितः स्यात्तत्र पुष्प-वन्तो वृक्षा ज्ञेयाः, तत्रापि शुक्रस्य बलाबलवशेन तदाधिष्ठितराशि-वशेन, तेन योगकृद्ग्रहगुणवशेन च पुष्पाणां वर्णविवेकः कार्यः । पशुराशौ तुरीयेशेन सहास्थितः शुक्रोऽश्ववृषभादिवाहनं विदधाति । तत्रापि सूर्यः स्वसंबन्धवशादश्वं, चन्द्रो वृषभं करोति । पंचमेशेन सह यदि शुक्रः पंचमभावे स्थितः स्यात्तदा मन्त्रजापको भवति । स्वक्षेत्रगो दैत्यपूज्यो भौमेन युक्तो दृष्टो वा चेदथवा भौमात्रिंशांशे स्थितश्चेत्तर्हि अतिकामुको भवति । शुक्रो लग्नद्वितीयसप्तमैकादशं-गतश्चेद्राहुर्लग्ने दशमे वा स्याद्भानुरष्टमे स्थितः स्याद्गुरुः सप्तमे चेत्तदापि अतिकामुको भवति ॥ इति शुक्रफलम् ॥

दौत्यं संन्यासिवेशं धनजनहरणं दुर्दशा वातकोपम् ।
स्नायूनां पादजा वा ह्यतिविषमभवा व्याधयश्चिन्तनाच ॥
आलस्यं पंगुनिद्राऽनिलविपिनगुहादुष्टतानास्तिकत्वम् ।
दौर्गन्ध्यं लौहघातं कलहमलिनतातैलमाषादिकांश्च ॥ ३४ ॥

दौत्यमित्यादि—दूतानामनेकविधत्वाज्जनुषि राजयोगे जातस्य नरस्य शनिस्तृतीयेशेन षष्ठेशेन वा सहितः स्वोच्चोदितादिकालबलप्राप्तराशौ चरादिनवांशे स्थितश्चेत्तर्हि स नरो राश्यादिबलाबलगुणवशेन तादृगेव दौत्यं करोति । अष्टमेशेन राहुणा वा योगकृच्छनिर्यदि तृतीयषष्ठेशयोरन्यतरस्य राशौ तच्छड्वर्गादिविभागे वा गतश्चेत्तदा जातो नरः परच्छिद्रान्वेषको भवति । तथाविधः शनिर्यदि स्वनीचादिराशौ गतश्चेत्तर्हि स्वार्थरहितोऽपि पिशुनो भवति । यस्य लग्नान्नवमभावे शनिः स्यादथवा नवमेशेन व्ययेशेन वा योगं करोति, अथवा सबलः सन् केन्द्रस्थितश्चेत् स सन्यासी भवति । तादृशः सौरिर्यदि सूर्येण सह स्थितश्चेदथवा निर्बलश्चेत्तर्हि संन्यस्यापि पुनः प्रव्रज्यां परित्यजति । शनिर्धर्मेशश्चेदथवा धर्मेशाधिपतिर्भूत्वा परमनीचगतः सन् नीचस्थग्रहैर्योगकृच्चेत्तदा जातः स्वधर्मं त्यक्त्वा परधर्माश्रयणं करोति । यस्य लग्नाच्चन्द्राद्वा द्वितीये शनिः स्थितश्चेत् स सर्वभक्षी भवति । राहुणा सह स्थितश्चेन्नास्तिको भवति । तथाविधः शनिश्चरराशिगतश्चेत्तर्हि नरः कदाचिदास्तिकः कदाचिन्नास्तिकश्च भवति । शनिरष्टमे द्वादशे पंचमे वा स्थितः स्याद्, धनेशं धनभावं वा कुजः पश्यति तदा धननाशो भवति । तथाच गोचरगतः शनिः शत्रुदृष्ट्या यान्यान् भावान् तदीशान् तत्कारकान्वा यदा २ पश्यति तत्काले यदि बलरहितोऽपि गुरुस्तान् शनिदृष्टान् भावादीन् गोचरे न

पश्यति चेत्तर्हि तत्तद्भावादिसंबन्धिवस्तूनां क्लेशो वक्तव्यः ॥

तथैव जनुषि यस्मिन् कस्मिंश्चिद्भावे स्थितः शनिर्यान् भावान् भावेशांश्च पश्येत्तान् गोचरे कश्चिदपि पापग्रहो निरीक्षयेत्तदा तत्तद्भावसंबन्धिनी हानिर्वाच्या । यदि तदा गोचरशनिरपि पश्यति चेत्तर्हि किं वाच्यम् । षष्ठेशेन सह शनिर्यस्य भावस्यांशे स्थितः स्यात्तद्भावसंबंधिन्यवयवे वायुविकारजं कष्टं वाच्यम् । शनिः सप्तमे द्वादशे वा भावे तृतीयद्रेष्काणगतश्चेत्तदा पादे पीड़ां जनयति । स एव यदि पापदृष्टश्चेत्तर्हि पीड़ाधिक्यं करोति । लग्नाद्द्विती-यचतुर्थपंचमसप्तमाष्टमैकादशस्थः शनिर्यदि बलयुतश्चेन् महाव्याधीन् चिन्ताक्लेशांश्च ददाति । स एव यदि निर्बलश्चेत्तर्हि व्याध्यादीन् स्वल्पान् ददाति । लग्नेशो यदि शनिक्षेत्रादिगतश्चेत्तर्हि जातो नरो अलसो भवति । प्रश्नकाले जीवप्रश्ने सति तन्वधीशो निर्बलः सन् शनिना सह योगं कुर्वन् ह्रस्वराशौ स्थितः स्यात्तथा तात्का-लिकश्चन्द्रस्तदा तेन राशिना योगं करोति चेत् तस्मिन् काले नरः स्वपिति । तथाच यस्य जनुर्लग्नेश्वरः शनिना सह योगं करोति अथवा शनिः स्वयमेव लग्नेश्वरः सन् नीचास्थितश्चेदातिनिद्रालु-र्भवति । शनेर्वायुतत्त्वाधिपत्वात् स्वाधिष्ठितराशिगुणसंबन्धिनो वातविकारान् जनयति । यथा सिंहराशौ सिंहनवांशस्थः शनिः सिंहवत् जृंभाविकारं जनयिष्यति । यादृशः शनिर्लग्नाद्यस्यां दिशि स्थितः स्यात्तस्यामेव दिशि तादृशान् वनगुहादीन् कथयेत् । षष्ठेशः शनिना सह योगकरश्चेत्तदापि षष्ठेशग्रहस्वभावानुरोधेन दुष्टतां करोति । शुक्रः शनिषड्वर्गगतश्चेत्किंवा शनिः शुक्रषड्वर्गगतश्चे-त्तर्हि जातो दुर्गन्धस्वेदवान् भवति । अयं योगो वर्षलग्नेऽपि विचार्यः । लग्नाधीशस्य शत्रुग्रहेण सह शनिर्यदा तात्कालिकीं मैत्रीं करोति कुजेन च दृश्यते तदाऽवश्यं लौहघातं भवति ।

५

शनिभौमयोस्तात्कालिकचन्द्रेण सह यदा युगपद्योगो भवति तदा तस्मिन्नेव क्षणे तद्भावसंबन्धिपुरुषेण सह कलिर्जायते । जन्मलग्नाच्छनिर्यद्भावाधिष्ठितः सन् यस्यां दिशि स्थितः स्यात्तात्रत्यानि अङ्गवस्त्रभूम्यादीनि मलिनानि वाच्यानि । शनिर्जलचरराशिगश्चेत् तैलसंबन्धं जनयति । शुक्रक्षेत्रस्थः शुक्रसंदृष्टो वा शनिश्चेत्तदा राशिगतधर्मानुरोधेन तत्तद्वर्णानि तिलातसीमाषादीनि अन्नानि ज्ञेयानि ॥

नीलमणिं गणिकामपि वृद्धां वृद्धनरं गरलं मरणं वा ।
लुब्धकभिल्लकुभाण्डकुलक्षणयवननपुंसकशल्यं मन्दात् ३५

नीलमणिमिति ॥ रत्नाजीविकायोगे यदि शनिना सम्बन्धश्चेत्तर्हि नीलमणिव्यापारवान् भवति । शनिसंबन्धिरोगमुक्तये नीलमणिधारणं विधेयं । बुधक्षेत्रगतो बुधेन सह योगकरो वा शनिर्यदा सप्तमभावे स्यात्तदा वृद्धवेश्यागमनं करोति । सप्तमेशः पापदृष्टश्चेदथाष्टमेशः सप्तमभावे शनिना दृष्टश्चेद्विधवायायी भवति । लग्नादिभावेश्वरास्तत्काले यदि सौरिसंबन्धवन्तः स्युरथवा शनिरेव भावेश्वरश्चेत्तर्हि तत्र वृद्धपुरुषसंबन्धो ज्ञेयः । आत्मकारकांशे शनियोगवान् यदि गुलिकः स्यात्तदा विषाशनो विषोत्पादको वा भवति । मृत्योर्विचारोऽपि शनेरेव कार्यः । शनेरष्टमस्थः पापग्रहश्चेज्जातोऽल्पायुर्भवति । लग्नाल्लग्नेश्वराद्वा द्वितीये सप्तमे वा शनिः स्थितश्चेल्लोभवान् भवति । शनिर्नरराशौ वन्यजीवराशिनवांशे स्थितश्चेच्छूद्रादिजातीन् तथाच वन्यराशौ नरराशिनवमांशे स्थितश्चेद्भिल्लादिजातीन् करोति । चतुर्थेशेन सम्बन्धवान् चतुर्थेशो वा शनिर्यद्ग्रहवर्गस्थितः स्यात्तत्र तद्वर्गेश्वरो यदि बलयुतश्चेत्तदा तद्धातुसंबन्धि पात्रं ज्ञेयं, किन्तु तत्पात्रं कुत्सितं ज्ञेयं । यस्मिन् भावे बुधादिदृष्टः शनिश्चेत्तद्भावसंबन्धिन्यङ्गे चिन्हं

वाच्यम् । शनिः सप्तमे चेदथवा सप्तमेश्वरः शनिवर्गगतो भवेच्छनिश्च बलविहीनश्चेत्तदा जातः क्लीबवद्भवति । तथाच विषमक्षेत्रगतः शनिः समक्षेत्रगतं ग्रहान्तरादृष्टं बुधं पश्यति चेज्जन्मषंढो भवति । निधिप्रश्ने तुरीयभावगतोऽथवा तुरीयेशेन योगकृच्छनिः कस्मिंश्चिदपि भावे स्थितश्चेत्तर्हि नवांशविभागवशेन क्षेत्रे कालपुरुषाङ्गसम्बन्धीन्यस्थीनि ज्ञेयानि ॥

॥ इति शनिफलम् ॥

कीर्तिं छत्रं मानं शून्यस्थानं तनौ धरायां वा ।
हिंस्रकजन्तुं व्रणमपि रोगान्वा सान्निपातजान् ध्वान्तं ॥ ३६ ॥
दुष्टप्रेतांश्छद्मनिवेशं राज्ञां शत्रून्कीटविभेदान् ।
मिथ्यां वाणीं चौरविमत्स्यान् घातं राहोर्म्लेच्छकदन्नान् ३७

कीर्तिरिति ॥ दशमाधिपती राहुपृष्ठविभागगतश्चेद्राहुर्गुरुदृष्टश्चेत्तथा स्थानबललब्धिरपि स्यात्तर्हि तत्र जातस्य कीर्तिर्दिगन्तसंस्पर्शिनी भवति । यदि दशमेश्वरो राहुमुखभागे स्थितः स्यात्तदधिष्ठितभावाधिपोऽपि नीचादिगतः पापदृष्टश्चेत्तदा तस्य नरस्य अकारणमेव कीर्तिनाशपदभ्रंशादयश्च भवन्ति, एतादृशौ योगौ जन्मलग्नाद्यदा गोचरे भवतस्तदापि कीर्तिलाभो हानिर्वा निर्देष्टव्या । इत्थमेव नवमेश्वरेण सह यदोक्तराहुयोगः स्यात्तदा राज्ञां छत्रभंगश्छत्रलाभो वा वक्तव्यः, इतरेषां जनानां तु पित्राद्याश्रयदातुः प्राप्तिर्नाशो वा कथनीयः । तत्काले यदि रविरपि राहुग्रस्तोऽन्यपापावलोकितश्चेत्तदा नितरां हानिर्वक्तव्या । उक्तप्रकारेण वर्षप्रवेशकाले यदि राहुर्नवमेशेन दशमेशेन वा योगं करोति लग्नेश्वरश्च बलरहितश्चेत्तदा तत्र वर्षे माननाशो भवति, अन्यथा तु मानादिवृद्धिर्भवति । राहोराकाशीयग्रहत्वाच्छरीरे उदरास्थिनालिकाद्यव-

काशयुक्तभागे राशिग्रहादिसंबन्धवशेन पीड़ा वाच्या । तत्र सूर्यसम्बन्धेन शिरसि, चन्द्रेण मुखमण्डले, कुजेन कंठे, बुधेन हृदि, गुरुणा नाभिदेशे, शुक्रेण पृष्ठे नेत्रयोश्च, शनिना पादयोः पीड़ा ज्ञेया । तत्रापि राशियोगवशेन पृष्ठाद्यङ्गविभागो ज्ञेयो यथा शीर्षोदयराशावग्रभागे, पृष्ठोदयराशौ पृष्ठविभागे, तत्र शीर्षोदये सत्यपि यावति पृष्ठविभागे दृष्टिसंबन्धस्तावति पृष्ठभागे, तथाच पृष्ठोदयराशौ सति यावच्छीर्षोदये दृष्टिसम्बन्धस्तावदग्रभागेऽतर्मुखान् विद्रधीनथवावयवान्तर्गतान् विद्रधिव्रणादिविकारान् करोति । इत्थमेव भूविभागेऽपि सूर्येण देवगृहसम्बन्धिनीं, चन्द्रेण जलगृहसंबन्धिनीं हानिं तत्सम्बंधिलाभं वा विदधाति । राहोरपि वन्यग्रहत्वेन स वन्यान् पल्लीलूतामूषकसर्पाजगरादीन् जन्तून् नासूराख्यान् व्रणान् काल्पितविषान् सन्निपातादीन् दूषितमहाव्याधींश्च समुत्पादयति नाशयति च यतो ग्रन्थान्तरेष्वपि सूर्यनवांशस्थो राहुर्गुरुशुक्रदृष्टश्चेद्विषवैद्य इत्युक्तमस्ति । राहुः षष्ठेशेन सह यदि संबन्धकरस्तदा राशियोगवशेन नानाजातीयदुष्टप्रेतबाधां करोति । राजशत्रूणां सर्पजातिविशेषाणां च विचारस्तेनैव कर्तव्यः। लग्नाद्वितीयत्रिकस्थो यदि राहुर्लग्नाद्वितीयत्रिकेशैर्दृष्टश्चेदथवा तैर्युक्तश्चेत्तर्हि तदा जातो नरोऽनृतवक्ता वाचालो भवति । राहुर्द्वितीयचतुर्थत्रिकाधीशैः सह यादृग्योगकरस्तथैव राह्वधिष्ठितराश्यधीशो यादृशस्य सौम्यस्य पापस्य वा ग्रहस्य क्षेत्रगतः स्यात्तादृश एव चौरो वाच्यः । विविधजातीयानां मत्स्यादिजन्तूनां तद्व्यवसायकर्तॄणां च विचारो राहोरेव कार्यः । तात्कालिको राहुस्तात्कालिकचन्द्रेण सह यदा संयुज्यते तदा तत्संबन्धिनि शरीरावयवे क्षुद्रमहाशस्त्रादिघातो भवति, एतद्विशेषस्तु नरपतौ द्रष्टव्यः । म्लेच्छादिमलिनजातिमतां कदन्नादीनां च विचारः शास्त्रकाद्रिस्तस्मा-

देव कृतोऽस्तीति सर्वं मतिमतां सुगमम्, मया त्वत्र संकेतमात्रं प्रदर्शितं । इति राहुफलम् ॥

इति श्रीरत्नाभरणे श्रीनाथाभिधटीकायां कारकप्रकरणम् नाम द्वितीयरत्नम् ।

अथ भावप्रकरणम् ।

लग्नाद्यारभ्य भावस्त्रिकपतिसहितश्चेत्तदीशस्त्रिकस्थः ।
क्रूरैर्युक्तोऽथ दृष्टो यदि जनुषि समाप्रश्नकालेऽथ जन्तोः ॥
तत्तद्भावोत्थमेषां सकलशुभफलस्यापहारं विरोधं ।
दुःखातंका न्विचित्रान् धनजनहरणं व्याधिमाधिं तनोति॥ ३७॥

लग्नात्तनोः सकाशादारभ्यलग्नमादिंकृत्वा भावास्तनुधनसहजादयः, अथवा तदीशास्तेषां तन्वादीनां ईशाः स्वामिनो मेषादि गणनया भौमादय इति यावत्, त्रिकस्थाः त्रिषडायस्थाः स्युरथवा त्रिकपतिसहितास्त्रिषडायेश्वरैर्युक्ताःस्युः,पुनश्च ते भावा भावाधिपतयो वा क्रूरैः क्रूरग्रहैर्युक्ताः सहिता दृष्टा वा चेद्यदि स्युरेतादृशो योगो यदि जन्तोः प्राणिनो जनुषि जन्मकाले समाप्रश्नकाले वर्षप्रवेशकाले प्रश्नसमये वा स्यात्तदा तत्तद्भावाभिलभ्याखिलशुभफलकस्य, ते ते भावास्तन्वादयस्तेषां संबन्धेन यदभिलभ्यं प्राप्यं शुभफलकं धातुमूलजीवादिसौम्यफलजातं तस्यापहारमपहरणं पूर्णतया प्राप्तव्यस्य शरीरसुखादेरनवाप्तिमित्यर्थः, तथैव तत्तद्भावसंबन्धिजनानां मृत्युं तैः सह विरोधं, विचित्रां विलक्षणां प्रकटयितुमनर्हामित्याशयः, दुःखातङ्कां दुःखसहितां पीड़ां, धनजनहरणं द्रव्यस्य स्त्रीसुतादिजनस्य हरणं, व्याधिं रोगमाधिं मानसीं व्यथां प्रकुर्युर्विदध्युः । अयं भावः—भावेशस्त्रिकस्थितः सन् शुभदृष्टश्चेत् किंवा त्रिकेशस्तत्तद्भावगतः सन् शुभदृष्टश्चेत्तर्हि योगद्वयेऽपि

किञ्चित् क्लेशसंबन्धो ज्ञेयः, यदि भावेशस्त्रिकेशो वा शुभक्रूरान्यतरग्रहैर्दृष्टश्चेद्भावेशत्रिकेशयोर्मध्ये, एक उभौ वा ग्रहौ परस्परस्थानस्थितौ भावेशस्त्रिके त्रिकेशो भावे च स्थितश्चेत्तदा किञ्चित्क्लेशं किंचिदौदासीन्यं च कुरुतः, उक्तयोगे यदि भावेशत्रिकेशौ स्वनीचस्थौ, लग्नाधिपस्य च शत्रुभूतौ, द्व्यधिकपापग्रहैरवलोकितौ स्यातां तदा तद्भावसंबन्ध्यनिष्टफलसंभवे किं वक्तव्यम्! यदनिष्टं न स्यात्तदेव न्यूनं ज्ञेयं । यदि भ्रातृमातृगुरुपितृस्त्रीपुत्रधनराजादिकारकास्तत्तद्भावाधिपतयो वा लग्नेशस्य सर्वथा रिपवः सन्तोलग्नेशं पश्यन्ति च तदा तेषामात्मीयत्वेऽपि ते महावैरिणो भूत्वा लग्नेशं क्लेशयन्ति नाशयन्ति च ।

भावेशोऽस्तमितो यदा तदधिजं भावप्रयुक्तं फलम् ।
नष्टं चोदयसंगतोऽभ्युदयदो वक्रे तु वक्रंतथा ॥
उच्चे नीचगते क्रमेण नृपतिर्दीनोऽथ नेत्राधिके ।
ज्ञेयं लग्ननवांशतश्च रवितः शिख्यर्कयोर्योगवत् ॥३८॥

भावेश इति—भावेशस्तन्वादिभावानां मध्ये यस्य कस्यचिद्भावस्येशोऽधिपतिर्यदास्तमितः सूर्येण सहैकराशिस्थत्वादस्तं गतोऽस्तगमनोद्युक्तो वा यदि स्यात्तदा तद्भावसंबन्धि फलं शरीरवर्णचिन्हाद्यित्यादिरूपं भावजन्यं फलमस्तं नष्टप्रायमकिंचित्करं भवति । भावेश उदयसंगत उदित उदयाभिलाषी वोदययुगंकुरितामिव फलं भवति । भावेशे वक्रे वक्रगतियुते तु वक्रं विपरीतं फलं भवति । अत्र प्रभाकरनिशाकरयोर्वक्रगत्यभावत्वाद्राहुशिखिनोश्च मार्गगत्यभावत्वात्तदधिष्ठितराश्यधिपस्यास्तादिस्थितिवशेन तादृक् फलं वाच्यम् । अथ नेत्राधिके द्व्यधिके भावेशे उच्चे स्वोच्चराशिस्थे सति जातो नृपतिर्भवति । तथा च

नेत्राधिके भावेशे नीचगते स्वस्वनीचराशिस्थिते सति दीनो दरिद्रो भवति । अत्र परमोच्चस्थग्रहापेक्षयोच्चाभिलाषी ग्रहः श्रेष्ठस्तथा परमनीचस्थग्रहापेक्षया नीचाभिलाषी ग्रहस्त्वनिष्टो ज्ञेयः । तस्मात् स्वोच्चस्थितस्य ग्रहस्याधिपतिर्यद्युच्चाभिलाषवान् स्यात्किंवा नीचस्थग्रहाधिपतिर्यदि स्वोच्चाभिलाषी स्यात्तदा जातो नृपो भवति । एवमेवोच्चस्थितग्रहस्याधिपो यदि नीचाभिलाषी स्यात्तदा जातो नृपोऽपि स्वराज्याद्भ्रश्यते । एतदेव प्रोक्तफलं भावानां नवांशाधिपानां द्वादशांशाधिपानामप्युदयास्तादिनीचोच्चादिस्थितिवशात् शिख्यर्कयोः ग्रहणकाले स्पर्शमध्योन्मीलनमोक्षकालवत् भूतं वर्तमानं भविष्यद्वा वक्तव्यम् ॥

भावेशाः सौम्यदृष्टाः खलखगरहिताः केन्द्रकोणेशयुक्ताः ।
केन्द्रे कोणे स्वआये त्रिकपतिवियुताश्चेत् स्थिताः सर्वकाले ॥
आरोग्यं राज्यवृद्धिं सुमतिधनधरास्वच्छकीर्तिं सुरूपम् ।
वामापुत्रैर्विनोदं खगगुणवशतो भावजं सत्सुखं च ॥३९॥

भावेशा इति—भावेशास्तन्वादिभावाधिपाः सौम्यदृष्टाः शुभग्रहावलोकिताः खलखगरहिताः खलखगैः क्रूरग्रहैरहिता दृष्टियोगादिसम्बन्धवियुक्ताः केन्द्रकोणेशयुक्ताः केन्द्राणां लग्नचतुर्थसप्तमदशमानां कोणयोर्नवमपंचमयोश्च य ईशा अधिपतयस्तेभ्यो युक्ताः सहिता अपिच त्रिकपतिरहितास्त्रिषडायाधीशैर्वियुक्ताः सन्तो यदि केन्द्रे, कोणे, स्वे द्वितीये, आये एकादशे वा स्थिताः स्युः (अयं योगस्तु जन्मप्रश्नवर्षप्रवेशकाले च सर्वदा चिन्त्यः) तदारोग्यं शरीरनैरुज्यं, राज्यवृद्धिं, सुमतिधनधरास्वच्छकीर्तिं, सुरूपं सौंदर्यं, रामापुत्रैः प्रमदादिभिः सह विनोदं हास्यादिक्रीडासुखं दिशन्ति । एतदुक्तं भावजं यत् सत् सुखं आरोग्यादिरूपं तत्सर्वं खगगुण-

वशतः संबन्धिग्रहाणां गुणवशाद्भवतीति धीमाद्भिः सर्वं विचिन्त्यम् ॥

अत्यष्ट्यंशविहीनबाणभयुतस्तात्कालिकोऽर्कों यदा ।
धूमः स्यात् सभचक्रतश्च वियुतः पातस्तु भार्द्धेन युक् ॥
वेशः स्याद्रवितो वियुग्धनुरथो शैलेन्दुभागैश्च युक् ।
केतुःस्यात् फलदायका हि नितरां गुप्ताःखगाःकीर्तिताः॥४०॥

अत्यष्ट्यंशेति—यदा तात्कालिकः सूर्योऽत्यष्ट्यंशविहीन-बाणभयुतोऽत्यष्ट्यंशाः सप्तदश अंशास्तेभ्यो विहीनं रहितं यद्बाणभं राशिपंचकं तेन युतो युक्तः स्यात् स धूमो धूमकेतुसंज्ञक उपग्रहः स्यात् । अत्र केचिद्ग्रन्थकाराः कलानां विंशतिं तत्र पुनर्योजयन्ति । स एवोक्तो धूमो भचक्रतो द्वादशराशिभ्यः सकाशात् वियुतो रहितः कार्यस्तदा स पातो व्यतीपाताख्य उपग्रहो भवति । स एव भार्द्धेन राशिषट्केन युक् युतो वेशस्तन्नामा उपग्रहो भवति । स एव वेशो रवितो द्वादशराशितः सकाशाद्वियुक् रहितः कार्यः स धनुरिन्द्रधन्वाख्य उपग्रहो भवति । अथोऽनन्तरं स धनुरुपग्रहः शैलेन्दुभागैः सप्तदशांशैर्युक् युक्तः कार्यः स केतुराख्यो ग्रहोभवति । अत्र सप्तदशांशयोजनस्थाने केचित् षोडषांशान् चत्वारिंशत्कलाश्च योजयन्ति । एते प्रोक्ता धूमादय उपग्रहा गुप्ता अप्रकाशिता ग्रहाः प्रोच्यंते । तेषां प्रयोजनं त्विदं यदेते सूर्याद्वक्ष्यमाणस्थानस्थिता यदा भवन्ति तदा शुभाशुभं वक्ष्यमाणं फलं दिशन्ति । विशेषस्तु पाराशर्यादौ द्रष्टव्यः ॥

कर्मायाङ्कत्र्यारिस्थौ धराणिधनसुहृद्वर्द्धनौ धूमपातौ ।
मान्दिः पुण्यायशुष्मारिपुसदनगतः कीर्तिधीवृद्धिसौख्यं ॥
वेशः सूर्यायशैलस्थित इनवसुवैश्वानरस्थश्च चापः ।
प्राणस्तर्केन्दुवन्ह्यद्रिरविवसुगतः कष्टभाजं करोति ॥४१॥

कर्मायाङ्केति—धूमपातौ धूमकेतुव्यतीपातसंज्ञकौ उपग्रहौ लग्नाव कर्मायाङ्कत्र्यरिस्थौ कर्म दशमं, आयः एकादशं, अङ्कः नवमं, त्रिः तृतीयं, अरिः षष्ठं, एषु स्थानेषु स्थितौ यदि भवतस्तदा धरणिधनसुहृद्वर्धनौ भूमिद्रव्यमित्रादिवृद्धिकरौ भवतः। मान्दिर्गुलिको वक्ष्यमाणः पुण्यायशुष्मारिपुसदनगतः पुण्यं नवमं, आय एकादशं शुष्मा तृतीयं, रिपुसदनं षष्ठं एतेषु भावेषु गतः प्राप्तश्चेत् कीर्तिधी-वृद्धिसौख्यं ददाति । वेशः परिवेशः सूर्यायशैलस्थितः सूर्यो द्वादशं, आय एकादशं, शैलाः सप्तमं, एषु स्थितः, तथा चापः इन्द्रधनुरि-नवसुवैश्वानरस्थः इनो द्वादशं, वसुरष्टमं, वैश्वानरस्तृतीयं, एतेषु स्थितः तथा च प्राणो वक्ष्यमाणस्तर्केन्दुवन्ह्यद्रिरविवसुगतस्तर्कः षष्ठः, इन्दुर्लग्नं, वह्निस्तृतीयः, अद्रिः सप्तमः, रविर्द्वादशः वसुरष्टमः, एषु भावेषु गतः प्राप्तश्चेत्तदा जातं नरं कष्टभाजं क्लेशभाजं करोति।

गोत्राशैलाङ्गभूतश्रुतिपवनसखाद्व्यादयोऽर्कादिवारे ।
क्षीरोदाग्न्यश्विगोत्रा गिरिरसविशिखाः कालखण्डं च नक्तं
शुष्मापक्षेन्दुभोगीरसशरनिगमा मृत्युभागा दिने च ।
षड्बाणाऽब्ध्यग्निपक्षाक्षितिधरणिधरा रात्रिकाले सदैव ४२

अथेदानीं गुलिकादिज्ञानोपयोगि कालखंडादिकं लिख्यते गोत्रा इत्यादि—रव्यादिवारे रविर्भानुरादिः प्रथमो येषु ते चन्द्रकुजा-दयस्तेषां वारे दिवसेऽह्नि दिनमानेऽष्टधा विभक्ते सति क्रमेण गोत्राशैलाङ्गभूतश्रुतिपवनसखाद्व्यादयो गोत्रा प्रथमः, शैलः सप्तमः, अङ्गं षष्ठः, भूतः पंचमः, श्रुतिश्चतुर्थः, पवनसखा तृतीयः, द्विर्द्विती-यादयः खंडाः कालखंडसंज्ञका ज्ञेयाः । तद्यथा दिनमानेऽष्टधा विभक्तेऽष्टावंशा भवन्ति तत्र रविवासरे प्रथमोंऽशः कालखंडाख्यो भवति चन्द्रे सप्तमः, भौमे षष्ठः, बुधे पंचमः, गुरौ चतुर्थः, भृगौ

तृतीयः, शनौ द्वितीयोंशः कालखंडाभिधो ज्ञेयः । नक्तं रात्रौ तु रव्यादिवारेषु क्रमेण रात्रिमानमष्टधा विभज्य क्षीरोदाग्न्यश्विगोत्रा-गिरिरसविशिखाः क्षीरोदश्चतुर्थो, अग्निस्तृतीयः, अश्वि द्वितीयः, गोत्रा प्रथमः, गिरिः सप्तमः, रसः षष्ठः, विशिखः पंचमः खंडः कालसंज्ञको भवति । तद्यथा—रवौ रात्रिमानमष्टधा विभज्यागतश्चतु-र्थोऽशः कालाख्यः । एवं चन्द्रे तृतीयः, भौमे द्वितीयः, बुधे प्रथमः गुरौ सप्तमः, भृगौ षष्ठः, शनौ पंचमोंऽशः कालाख्यः । अथ मृत्युखण्डानि प्रोच्यन्ते शुष्मेत्यादिना । रव्यादिषु सप्तसु वारेषु दिने दिवा दिनमानमष्टधा विभज्य क्रमेण शुष्माद्योंऽशा मृत्यु-संज्ञका ज्ञेयाः । रवौ शुष्मा तृतीयः, चन्द्रे पक्षो द्वितियः, कुजे इन्दुः प्रथमः, बुधे भोगी सप्तमः, गुरौ रसः षष्ठः, भृगौ शरः पंचमः, शनौ निगमश्चतुर्थो भागो मृत्युसंज्ञः । तथा रात्रौ रव्यादि-वारेषु क्रमेण षट् षष्ठः, बाणः पंचमः, अब्धिश्चतुर्थः, अग्निस्तृतीयः, पक्षो द्वितीयः, क्षितिः प्रथमः, धरणिधराः सप्तमः एवमाद्योंऽशा मृत्युसंज्ञका भवन्ति ॥

यामार्द्धं च दिने युगाग्निकरभूसर्पाङ्गबाणाः पुनः ।
सप्तांगाशुगवेदरामनयनक्ष्माद्या निशायामपि ॥
बाणाब्ध्यग्नियमेन्दुगोत्रजरसाः सूर्योदयादस्ततो ।
भूशैलांगशराब्धिवह्निहयजा नक्तं हि घंटान्तकः॥४३॥

अथ यामार्द्धं यमघण्टश्च कथ्यते यामार्द्धमिति—पुनः भूयः पूर्वोक्तप्रकारेण दिनमष्टधा विभज्य रव्यादिवारेषु क्रमेण यामार्द्धं ज्ञेयं । रवौ युगाश्चतुर्थोंशः, चन्द्रेऽग्निस्तृतीयः, कुजे करो द्वितीयः, बुधे भूः प्रथमः, गुरौ सर्पः सप्तमः, भृगावङ्गः षष्ठः, शनौ बाणाः पंचमोंऽशो यामार्द्धाख्यः । तथा निशायां रव्यादिवारक्रमेण सप्त

सप्तमः, अङ्गः षष्ठः, आशुगः पंचमः, वेदश्चतुर्थः, रामस्तृतीयः, नयनं द्वितीयः, क्ष्मा प्रथमःएवमाद्या अंशा यामार्द्धाभिधा ज्ञेयाः । एवं रव्यादिवारेषु दिवा सूर्योदयादारभ्य क्रमेण बाणः पंचमः, अब्धिश्चतुर्थः, अग्निस्तृतीयः, यमो द्वितीयः, इन्दुः प्रथमः, गोत्रजाः सप्तमः, रसः षष्ठांशो यमघण्टाख्यो ज्ञेयः । तथा रात्रौ क्रमेण भूः प्रथमः, शैलाः सप्तमः, अङ्गः षष्ठः, शरः पंचमः, अब्धिश्चतुर्थः, वह्निस्तृतीयः, हयो द्वितीयः एवमाद्या भागा यमघण्टाख्या भवन्ति ॥

शैलाङ्गाशुगवेदवह्निनयनक्ष्माद्या दिने रात्रिके ।
शुष्मानेत्रहिमांशुपर्वतरसप्रक्ष्वेडनाब्ध्यादयः ॥
मानं खण्डहतं गजाप्तमहनि रात्रौ द्युमानेन युक् ।
मान्दीष्टं तनुवत् सुसंस्कृतमिदं वारप्रवेशात् स्फुटम् ॥ ४४ ॥

अथेदानीं गुलिकखंडज्ञानं तत्साधनप्रकारश्च वक्ष्यते शैले-त्यादि—रव्यादिवारेषु दिने क्रमेण शैलः सप्तमः, अङ्गः षष्ठः, आशुगः पंचमः वेदश्चतुर्थः, वह्निस्तृतीयः, नयनं द्वितीयः क्ष्मा प्रथमः एवमाद्या अंशा गुलिकसंज्ञका ज्ञेयाः । रात्रिके रात्रौ तु रव्यादिवारेषु क्रमेण शुष्मा तृतीयः, नेत्रं द्वितीयः, हिमांशुः प्रथमः, पर्वतः सप्तमः, रसः षष्ठः, प्रक्ष्वेडनः पंचमः, अब्धिश्चतुर्थः एवमादयोंऽशा गुलिकाख्या ज्ञेयाः ।

अथ गुलिकादिसाधनप्रकारो विधीयते । अहनि दिवा चेत् गुलिकादिसाधनं क्रियते तर्हि मानं दिनमानं खण्डहतं स्वकीयपूर्वो-क्तखंडेन हतं गुणितं कार्यं ततः गजाप्तं अष्टभिर्भक्तं चेन्मान्दीष्टं गुलिकेष्टं भवति । रात्रौ चेत् साध्यते तदा रात्रिमानं स्वकीयेष्टखंडेन गुणितं कृत्वा तदष्टभक्तं कार्यं तत् पुनः द्युमानेन दिनमानेन युक् युतं कार्यं तदा मान्दीष्टं गुलिकेष्टं भवति । यदीदं वारप्रवेशाद्

गणितागतवारप्रवेशकालात् तनुवल्लग्नवत् सुसंस्कृतं चेत् स्फुटं सुस्पष्टं स्यात् ।

जीवाद्वै यमघण्टकश्च गुलिको मन्दाच्च मृत्युः कुजात् ।
यामार्द्धं हि बुधाद्दिवाकरमणेः खण्डः स्मृतः कालजः ॥
एतेषां गुलिकेष्टवत् स्फुटकृतं संलिख्य जन्माङ्गके ।
चक्रे यो गणकः फलं प्रकथयेत् मिथ्या न वाणी भवेत् ॥ ४५ ॥

जीवादिति—जीवाद् गुरोः सकाशात् प्राप्तः खंडः शेषो यमघंटको यमघंटसंज्ञको ज्ञेयः । मन्दात् शनेः सकाशात्प्राप्तः खंडो गुलिको ज्ञेयः । कुजाद् भौमात् प्राप्तः खंडो मृत्युर्मृत्युसंज्ञको भवति । बुधात् यामार्द्धसंज्ञः खण्डो ज्ञेयः । तथा दिनमणेः सूर्यस्य खण्डः कालजः स्मृतः । गुलिकेष्टवत् पूर्वश्लोकोक्तगुलिकसाधितेष्टवत् तेषां यमघण्टादीनामपि स्फुटतनुं स्पष्टलग्नं संसाध्य जन्माङ्गके चक्रे कुण्डलीसंज्ञके संलिख्य ग्रहवत् तत्तदागतभावेषु निवेश्य यो गणको ज्योतिर्वित् फलं प्रकथयेत् तस्य वाणी मिथ्या वृथा न भवेत् ॥

इष्टघटीर्वेदघ्नाः पलाश्च तिथ्याहृताश्च लब्ध्याढ्याः ।
शेषपला नेत्रघ्ना जन्मरविर्वै चरागभक्रमतः ॥ ४६ ॥
द्विस्वभावे श्रुतिर्योज्या स्थिरे तु वसवः पुनः ।
चरे न किञ्चित् योज्यं हि योज्यं संस्कृतभादिकम् ॥ ४७ ॥
तदा प्राणपदं जातं लग्नांशसममस्ति चेत् ।
शुद्धं तनुस्तथाचेष्टमन्यथेष्टं हि शोधयेत् ॥ ४८ ॥

अथ प्राणपदसाधनमाह–इष्टघटीरिति–द्विस्वभाव इति–तदेति त्रिभिः॥ इष्टघटीरिष्टकालघटी वेंदघ्नाश्चतुर्गुणिताः कार्याः। पलास्तु तिथ्या पञ्चदशेन हृता भक्ताः कार्याः । लब्ध्याढ्या लब्धाश्चतुर्गुणितघटीषु युताः कार्याः। ततः शेषपला अवशिष्टपला नेत्रघ्ना द्विगुणिताः कार्याः। पश्चात्तात्कालिको राश्यादी रविस्तत्र योज्यः, यदि रविर्द्विस्वभावराशौ स्थितश्चेत्तदा श्रुती राशिचतुष्टयी तस्मिन् योज्या । स्थिरे चेत् वसवोऽष्टौ योज्याः । चरे चेत् किञ्चिदपि न योज्यं केवलो रविर्योज्यः। तत् प्राणपदं भवति। किन्तु तथागतप्राणपदस्य लग्नस्यचांशयोस्तुल्यता समता चेत्तर्हि तनुर्लग्नं शुद्धं ज्ञेयं । अन्यथेष्टं शोधयेदिष्टघटीपलेषु यथा वृद्धिन्यूनत्वकरणेन लग्नांशप्राणांशयोरैक्यं स्यात्तथा कुर्यादित्यर्थः । अत्र प्राणपदोदाहरणं यथा–सं० १९८८ वैशाखकृष्णाष्टमी शुक्रे श्रीकाश्यां सूर्योदयादिष्टघट्यादिषु ३९।५२ कस्यचित् पुत्रजन्म। अत्रेष्टघट्यः ३९ चतुर्गुणाः कृतास्तदा १५६ जाताः। पला ५२ पंचदशेन हृताः फलं ३ लब्धं तच्चतुर्गुणितघटीषु १५६ युतं तदा १५९ जातं शेषाः ७ पलाः द्विगुणिताः १४ जाताः । तद्दिने रवीराश्यादिः ११।२७ सः १५९–१४ मध्ये योज्यस्तदा १७१।११ जाताः। अत्र रवेर्द्विस्वभावराशिगत्वात् ४ चत्वारः १७१ मध्ये योज्यास्तदा जातं १७५।११ ततः १७५ द्वादशभिर्भक्ताः लब्धं ७।११ एतत् प्राणपदं जातं । अत्र लग्नं ७।११ अस्य प्राणांशेन ११ समत्वाल्लग्नं शुद्धमस्ति इत्यर्थः ॥

प्राणपदं लग्नाद्वा चन्द्राद्वा कोणगं मनुष्याणाम् ॥
सप्तमगं भवगं वा तृतीयगं वा तु पक्षिणां जन्म ॥ ४९ ॥

चतुर्थाष्टमद्वादशे कीटजानां
पशूनां धने खे रिपौ प्राणजेऽस्मिन् ॥ ५० ॥

प्राणपदसाधनस्य प्रयोजनमाह प्राणपदमिति–प्राणपदं लग्नाच्चन्द्राद्वा त्रिकोणगतं चेन्मनुष्याणां, तथा लग्नाच्चन्द्राद्वा सप्तमभे सप्तमभावे, भवभे एकादशे, तृतीयगे वा पक्षिणामण्डजानां जन्म वदेत् । एवं प्राणपदं चतुर्थाष्टमद्वादशे चतुर्थाष्टद्वादशान्यतमस्मिन्भावे स्थितं चेत् कीटजानां जन्म प्रवदेत्, तथा प्राणपदे धने द्वितीयभावे, खे दशमे, रिपौ षष्ठभावे वा स्थिते सति पशूनां जन्म वदेदिति ॥

लाभेशस्तनुभावपेन सहितः स्वेष्टेन भावेशिना ।
योज्यः स्पष्टकलादिभागसहितस्तष्टोर्कतः शेषके ॥
अङ्के मन्दगते तदिष्टजगतं कष्टं सुखं ही गुरौ ।
तत्कोणादिगते तनोश्च भवतश्चेष्टाङ्कयोगेऽपि च ॥५१॥

लाभेशइति–जन्मलग्नकालीनो लाभेशो लाभभावाधिपती राश्यंशात्मकस्तनुभावपेन लग्नेशेन राश्याद्यात्मकेन सहितो युक्तः कार्यस्तदा जातोऽङ्को ध्रुवाङ्को भवति, ततोऽयं ध्रुवाङ्कः स्वेष्टेन स्वस्यात्मन इष्टेन भावेशिना भावाधिपेन राश्यंशात्मकेन सह योज्यो युक्तः कार्यः, तत्र राशिस्थानीया संख्या द्वादशाधिका चेद् द्वादशभक्ता कार्या तत आगतो यो राश्यंशात्मकोऽङ्कस्तस्मिन् मन्दगते शनौ प्राप्ते, तदिष्टजगतं तदिष्टभावसंबन्धि कष्टं क्लेशं वदेत् । गुरौ गोचरवशेन तत्रागते सति तद्भावसंबन्धि सुखं वाच्यम् । एतत् फलं पूर्वागतराश्यंशात्मकाङ्कात् कोणे नवमपंचमराशावपि शनिगुरुयोगे यथासंभवं कष्टसुखादिरूपं फलं वाच्यम् । एवं भावानामपि योगेनागताङ्के ततः कोणयोर्वा शनिगुरुयोगे सति पूर्वोक्तं फलं भवति । तत्र पूर्वं लग्नलाभभावयोरैक्यं कृत्वा ध्रुवाङ्कः स्थिरीकार्यस्तस्मिन् स्वेष्टभावस्य योगः

कार्यस्तदागतराश्यादौ तत्कोणयोर्वा संचारवशेन गोचरे शनिगुर्वोः प्राप्तौ कष्टसुखादिरूपं फलं भवति ॥

जीवाङ्के सहिते तथेष्टभयुते स्पष्टाङ्कगे वाक्पतौ ।
सौख्यं कोणगतेऽपि गोचरगते तद्भागकोणेऽपि वा ॥
मन्दे लग्नयुते ह्यभीष्टभयुते कष्टं हि कोणे गते ।
जीवे जन्मशके युते स्फुटमिदं भावेशयोगात् फलम् ॥ ५२ ॥

इष्टभावसम्बन्धिसुखादेः प्राप्तिकालज्ञानार्थं रीत्यन्तरं निरूपयति जीवाङ्के सहित इत्यादि—जीवाङ्के जीवो गुरुरङ्कं जन्मलग्नं चैते सहिते युक्ते कार्ये, तत आगतेऽङ्के इष्टभयुते इष्टभं स्वेष्टभावस्तेन युते युक्ते सत्यागतो यः स्पष्टाङ्कस्तत्र गते प्राप्ते वाक्पतौ गुरौ गोचरकाले प्राप्ते सति, तथा च तस्माद्राशेः कोणगते सति तदिष्टभावानुबन्धि सौख्यं वाच्यम् । एवमेव पूर्वानीतराश्यादिरूपेऽङ्के यो नवमांशः स्यात्तद्राशिगे तत्कोणस्थराशिगते वा गुरौ तदेव फलं वाच्यम् ।

मन्दे जन्मकालीनशनैश्चरे लग्नयुते राश्यादिजन्माङ्गेन सह युक्ते सति तत्र स्वेष्टभयुते स्वेष्टभावसहिते यो राश्यादिर्लब्धस्तस्मिन् तत्कोणराशौ वा यदा गोचरे शनिरागच्छति तदा तन्नवमांशराशौ वा प्राप्तः स्यात्तदा तद्भावसंबन्धि कष्टं दुःखं वदेत् । यथा १९५२ विक्रमीयसंवत्सरे जातस्य पूर्वोक्तोदाहरणीभूतस्य जन्मपत्र्यां लग्नं ४।४ गुरुः ३।१ इष्टभावः सप्तमः १०।४ एतेषां योगः ५।९ अयं कन्याराशिरेतत्त्रिकोणस्थौ राशी मकरवृषौ तेषु कन्यामकरवृषेषु यदा गोचरे गुरुः स्यात्तदा सप्तमभावसंबन्धि सुखं स्यात् ।

अत्रायं विशेषो यदुक्तयोगजन्यराश्यादौ गोचरे गुरुर्यदा समायाति तदेष्टभावो भावेशो वा यदि सबलश्चेत्तथा जन्मकालीनेष्टभावेशस्य भावस्य वोपरि समागतगुरोर्यदि दृष्टिपातो भवति

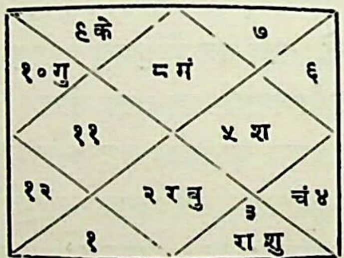
चेल्लाभो वाच्यः, एवं शुभदृष्टिवर्जिते बलहीने भावे भावेशे वा समागतशनेर्दृष्टिपातो भवति चेत्तर्हि तदिष्टभावसंबन्धिनी हानिर्वाच्या । अत्रैकस्मिन् मासे सामान्यतः सार्द्धद्व्यंशगतिप्रमाणेन देवगुरुः, एकांशगतिमानेन मन्दश्चलति, अतस्तदनुपातेन भानुचन्द्रौ संचार्य तस्मिन् मासे दिने चामुकलग्ने लाभादिः स्यादिति वक्तुं शक्यम् । किन्तु ग्रहाणां न्यूनाधिकचारवशेन योन्तरः स्यात्तं विचार्य फलप्राप्तिकालं वदेदन्यथा तदन्तरवशात्फलप्राप्तिकालेऽप्यन्तरः स्यात्तेन दैवज्ञस्यापि कथनेऽविश्वासः प्रसज्जेत ।

अत्रोदाहरणं श्रीसंवत् १९४७ ज्येष्ठशुक्ले पञ्चम्यां शनिवारे घ० ६।१७ पुष्यभे ३६।३५ गण्डयोगः २९।४५ परं वृद्धियोगे वत्रकरणे ३३।४६ श्रीसूर्योदयादिष्टघट्यादौ ३४।३३ श्रीमद्दीक्षितश्रीनाथजीशर्मणः सूनोः श्रीकन्हैयालालदीक्षितस्य जन्म । रविः १।११ दिनं ३३।३१ भभोगः ६६।३५ भयातं ६४।३३ ।

तात्कालिकस्पष्टा ग्रहाः

र	चं	मं	बु	बृ	शु	श	रा	के
१	३	७	१	९	२	४	२	८
११	१६	१२	१२	२१	६	७	४	४
४	१५	३१	५०	३३	९	१४	३२	३२
३६	३४	३४	२६	३३	८	३	५९	५९
५७	७२०	१९	३७	१	७२	२	३	३
१९	५४	२	१३	३४	१८	३४	११	११

॥ लग्नम् ७।१७।४३।५ ॥



अत्र लाभेशो बुधः १।१२ लग्नेशो भौमः ७।१२ अनयोर्योगः ८।२४ अत्रेष्टः सप्तमभावो गृह्यते तदधिपः शुक्रो राश्यादिः २।६ अयं पूर्वानीतेन ८।२४ अङ्केन युक्तो जातोयमङ्कः ११।० मीनराशिस्तत्र गोचरे गुरुप्राप्तौ स्त्रीसुखं विवाहादिकं वाच्यं अतः एकषष्ट्युत्तरैकोनविंशतिशतमिते १९६१ वैक्रमे वत्सरे वैशाखशुक्ले १० चंद्रे विवाहो जातः ॥

मीनराशेः कोणस्थितौ कर्कवृश्चिकौ तत्रापि सप्तमभावसम्बन्धि सुखादि वाच्यम् ।

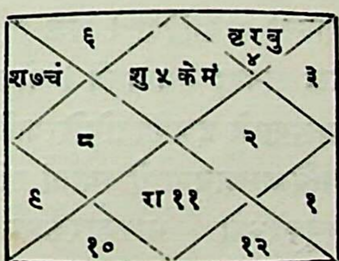
एवमेव भावानां योगेनापि विचार्यमत्र लग्नं ७।१७ लाभभावः ५।१७ अनयोर्योगः १।४ अस्मिन् सप्तमभावो १।१७ योज्यस्तदा जातोऽङ्कः २।२१ अयं मिथुनराशिः तत्र गुरौ आगते सति संततेः सुखं जातम् ।

पुनश्च संततिभावस्य विचारार्थमुदाहरणमप्येतस्यैव, तद्यथा लाभेशो बुधः १।१२ लग्नेशो भौमः ७।१२ योगः ८।२४ पंचमेशो गुरुः ९।२१ अयं समानीतध्रुवाङ्के ८।२४ योजितस्तदा जातोऽङ्कः ६।१६ अयं तुलाराशिरस्य कोणगतौ राशी १०।१६ कुंभः २।१६ मिथुनश्चास्मिन्राशित्रये तुलामिथुनगते गुरौ तु सुताप्तिः कुंभराशिगतबृहस्पतौ तु न कस्याश्चित्संततेर्जन्माभूत् तस्य निर्बल-त्वात् । स्त्रीपुरुषयोः संयोगादेव गर्भस्थितिस्तस्मात्पत्नीकुंडल्या उदाहरणं श्रीसं० १९५२ शाके १८१७ श्रावणे मासे शुक्ले पक्षे ९ तिथौ भौमे २६।४० विशाखाभे ३१।१७ शुक्लयोगे ४०।३३ तात्कालिके कौलवे श्रीरव्युदयादिष्टम् ६।१७ तत्काले कन्हैयालाल शर्मणः पत्नी जन्म ।

॥ स्पष्टा ग्रहाः ॥

र	चं	मं	बु	बृ	शु	श	रा	के
३	६	४	३	३	४	६	१०	४
४	२७	७	३	२	२७	८	२४	२४
०	४३	५२	४२	२०	३९	५९	२६	२६
५३	४४	४९	२४	२१	४२	५८	१	१
५७	८१७	३७	१४	३७	२	२	३	३
१३	५७	५७	१	५४	४७	४०	११	११

॥ लग्नम् ४।११ ॥



एवं पत्न्याः लग्नेशो रविः ३।४ पंचमेशो गुरुः ३।२ लाभेशो बुधः ३।३ योगः ९।९ कोणगतौ राशी १।९ वृषः तथा ५।९ कन्या । एवं लग्नम् ४।११ पंचमभावः ८।११ लाभभावः २।११

योगः ३।३ कोणस्थौ वृश्चिकमीनौ । अत्र भार्यायाः ध्रुवाङ्कस्य पत्युर्ध्रुवाङ्केन यदन्तरं जातं तस्य गर्भकालात्मकत्वान्नगण्यम् । लग्नेशभावेशयोर्दीप्तांशसंयोजनात्मकं चान्तरं, भावभावेशयोर्बलाबलं संतत्यादेः संभवासंभवं च विचार्य फलं कथनीयम् ।

अथ च पूर्वागतराशिः ५।९ कन्या तत्र मीननवमांशोऽतस्तस्मात् मीनराशेः त्रिकोणगतौ राशी कर्कवृश्चिकौ, एतेषु मीनकर्कवृश्चिकराशिष्वपि गुरावागते सति तत्सुखं वाच्यम् । किन्तु तत्र सुखयुक्तराशौ शन्यारादिपापग्रहस्य तत्कालेऽसत्वे दृष्टिसम्बन्धाभावे एव भविष्यति, अन्यथा तेषां दृष्ट्यादिवशात् तथैव सुखदुःखादिकं स्यात् ।

अत्रोदाहरणे विचारविशेषो यथा कर्कस्थे गुरौ उक्तपत्नया जातत्वात्कन्याराशौ यदा गुरुरायास्यति तदा न्यूनवयस्त्वात् तत्र विवाहादेरसम्भवः किन्तु तदा वाङ्निश्चयो भवितुं सम्भवति । अतःपरं मीनस्थे गुरौ नववर्षात्मकवयसः सम्बन्धात् तस्मिन् वर्षे विवाहनिश्चयः स्यात् । अतस्तस्मिन् वर्षे सप्तमभावसम्बन्धि सकलं फलं भविष्यत्यत्रापि कालक्रमबलेन नववर्षात्मके वयसि भवितुमर्हा एव धर्मा भविष्यन्ति, यथा विद्या, विवाहः, परीक्षा वृत्तिर्व्यापारे तन्नाम्ना पण्यादिश्च । अत्र सप्तमेशलग्नेशगुरूणां योगेन विवाहस्य स्फुटः समयः समायाति । योजयित्वा धीमन्तः पश्यन्तु । योजनात् वैशाखमासो दशमीतिथिरित्यादिकं स्फुटं भवति । यस्मिन् वत्सरेऽधिमासक्षयमासौ स्यातां तस्मिन्नेकमासस्यान्तरं पतति । ग्रन्थान्तरेषूक्तेभ्यो भावकारकसम्बन्धिवाक्येभ्यो भावाभावविचारं कृत्वा फलं वाच्यम् ॥

लग्नात्तर्कसमाः प्रकल्प्य कथयेत्तन्वादिभावाधिपो ।
यादृग्राशिखगादियुक् खलु भवेत्तादृक् फलं निश्चितम् ॥

भावोत्थं ग्रहयोगदृष्टिसहितं तत्कालकर्णप्रियम् ।
खेटानां परिचालनान्निजभतस्तर्काभिधोक्ता दशा ॥ ५३ ॥

लग्नादिति ॥ लग्नात्तनोः प्रारभ्य प्रतिभावानां तर्कसमाः षट् षट् वर्षाणि प्रकल्प्य वक्ष्यमाणप्रकारेण कथयेत् । फलमिति शेषः । लग्नादिभावानां मध्ये प्रत्येकस्य षट् वर्षाणि, अतोऽशपञ्चकस्य वर्षैकं त्रिंशदंशात्मकस्य भावस्य षड्वर्षाणि भवन्ति । तत्र तन्वादिभावाधिपो लग्नादिभावस्वामी, यादृग्राशिखगादियुक् यादृशा राशिना खगेन भावभावेशरूपेण दृष्ट्यादिसम्बन्धेन युक् युक्तः स्यात्तादृक् तादृशं सौम्यराशिग्रहादिसम्बन्धेन सुखदं तद्विपरीतेऽन्यथा फलं तत्तद्भावजं, निश्चितं निःसंशयं वाच्यम् । इत्थं षड्वर्षप्रमाणेन भावचालनं कृत्वा फलकथनरीतिरुक्ता ॥

एवमेव खेटानां ग्रहाणां रव्यादीनां भावेशस्वरूपाणां षट्षड्वर्षप्रमाणेन निजभतो निजं स्वकीयं यद्भं राशिस्तस्मात् अर्थात् यो ग्रहो जन्मकाले यस्मिन् राशौ स्थितः स तस्य राशिस्तस्मात् । परिचालनात् चालनेनेत्यर्थः । यादृशराशिग्रहादिभिर्दर्शनादिसम्बन्धस्तथा फलं वाच्यम् । अयं प्रोक्तः प्रकारः षड्वर्षीया दशेत्युच्यते ।

अर्काब्दान्यर्कमासानि मासैकं विश्वसंज्ञकान् ।
घस्रान् खाक्षिघटीयुक्तान् दिनमेकं तथा पुनः ॥ ५४ ॥
एकां घटीं द्वादश तथा रविशुक्रेज्यचन्द्रजाः ।
तथाष्टादश वर्षाणि सार्द्धाब्दं सार्द्धमासकम् ॥ ५५ ॥
षडब्दमपि राह्वारौ वक्रगत्या तु वक्रिणः ।
सप्तविंशतिवर्षाणि मासांश्चैव दिनानि च ॥ ५६ ॥
नव वर्षाणि वर्षैकं चलचक्रेऽपि सर्वदा ।
सपादद्व्यघस्रं च घटिका च तथा विधुः ॥ ५७ ॥

खाग्न्यादीनि तथा मन्दः सार्द्धद्वयघटीस्तथा ।
सप्तविंशतिऋक्षाणि भावैकं भं क्रमाच्च वै ॥ ५८ ॥
सर्वतोभद्रके चक्रे त्रिपताके च जन्मजे ।
इदं हि मध्यमं प्रोक्तं सूक्ष्मं तु गणितागमात् ॥ ५९ ॥

एवं सामान्यतो भावभावेशयोः षड्वर्गीयां दशामुक्त्वा विशेषतः सर्वग्रहाणां गतिभेदन चालनप्रकारं निरूपयति अर्क्काब्दानीति षड्भिः–

रविशुक्रेज्यचन्द्रजा भानुभार्गवगुरुबुधाः । स्वाधिष्ठितराशितः अर्क्काब्दानि द्वादशवर्षाणि, अर्कमासानि द्वादश मासानि, मासैकं, विश्वसंज्ञकान् त्रयोदशमितान् घस्रान् दिनानि, खाक्षिघटीयुक्तान् खं शून्यं, अक्षिणी द्वेऽर्थात्विंशतिसंख्यका घटच्यस्ताभिर्युक्तान् । तथा दिनमेकं पुनः एकांघटीं तथा द्वादश घटीश्च चलन्ति । राह्वारौ राहुभौमौ, अष्टादश वर्षाणि, सार्द्धाब्दमष्टादश मासान्, सार्द्धमासकं च षड्वर्षाण्यपि चलतः। तथाऽनुपातेन सार्द्धदिन घटीत्रयादिगत्यापि तयोश्चालनं विधीयते । जन्मकाले पंचताराासु यः कश्चिद् ग्रहो यदि वक्री वक्रगतिर्भवेत्तर्हि स आजन्म विपरीतगतिना चालनीयः।तथा विधुश्चन्द्रः सप्तविंशति २७ वर्षाणि २७ मासानि २७ दिनानि तथा नव ९ वर्षाणि, वर्षैकं सपादं, दिनद्वयं, सपादघटीद्वयं च तथानुपाततः सार्द्धचतुरो घटीश्च चलचक्रे चलति । मन्दः शनिः खाग्निवर्षाणि त्रिंशद्वर्षाणि, त्रिंशन्मासान्, त्रिंशद्दिनानि, त्रिंशद्घटिकाः, सार्द्धघटीद्वयं च चलति । सर्वे ग्रहाः स्वस्वोक्तगत्या सप्तविंशतिऋक्षाणि, भावैकं, एकभं एकनक्षत्रमपि चलन्ति । सर्वतोभद्रके चक्रे त्रिपताकीचक्रे जन्मचक्रे च ग्रहानुक्तरीत्या संचाल्य फलं कथयेत । अयं माध्यः प्रकारः । सूक्ष्मस्तु गणितशास्त्रादवगन्तव्यः । विशेषस्तु नरपतौ, पञ्चस्वरायां, रणहस्त्यादिग्रन्थेषु प्रदर्शितोऽ-

स्ति, जिज्ञासाधिक्यवता तेष्वेव द्रष्टव्यः । उक्तगतीनामुपपत्तिस्तु सिद्धान्ते निदर्शिताऽस्ति । वार्षिकदैनिकक्षणिकापत्तिलाभादिज्ञान-प्रयोजनेन हेतुना फलितागमज्ञैरेतद्गातिकल्पना कृताऽस्ति ।

भावघटीहोरादिलग्नविषयेऽप्युक्तं ग्रन्थान्तरेषु यथा—"सूर्योदयात् समारभ्य कलापंचप्रमाणतः । प्रयाति जन्मपर्यन्तं भावलग्नं तदुच्यते ॥ १ ॥ द्विसार्द्धघटिकाविप्रकलादिति विलग्नभाव । प्रयाति लग्नात्तं नाम होरालग्नं तदुच्यते ॥ २ ॥ सूर्योदयात् समारभ्य जन्मकालावधि क्रमात् । या चिन्त्या घटिका जाता तन्मध्ये चार्कभाजिता ॥ ३ ॥"

नरपतौ यथा—

दिशि यस्यां स्थितश्चन्द्रः सव्यमार्गेण राशिगः ।
राशिचन्द्रः स विज्ञेयः सर्वदा स्वरवेदिभिः ॥ १ ॥
समसप्तशलाकाख्ये कृत्तिकादिसमन्विते ।
शुक्लपक्षे द्वितीयायां यत्र भेऽभ्युदिते शशी ॥ २ ॥
चन्द्रे सप्तशलाकाख्ये वहन् मासर्क्षगः शशी ।
मासचन्द्रो भवेदेवं ज्ञातव्यः स्वरवेदिभिः ॥ ३ ॥
पूर्वोत्तरयतः शुक्ले कृष्णे पश्चिमदक्षिणे ।
पक्षभुक्तिप्रमाणेन पक्षचन्द्र इहोच्यते ॥ ४ ॥
चक्रे सप्तशलाकाख्ये ऐन्द्र्यां मध्येऽर्कभं न्यसेत् ।
ततो वामेन चन्द्रर्थं दिनचन्द्र इहोच्यते ॥ ५ ॥
दिनऋक्षात्तु सव्येन सपादघटिकाद्वयम् ।
प्रतिनाड्यां भवेद्भुक्तिरेष तात्कालिकः शशी ॥ ६ ॥
सप्तरेखाङ्किते चक्रे भानुभं यत्र संस्थितं ।
दिनभानुर्भवेदेवं चन्द्रवच्चेष्टकालिकः ॥ ७ ॥
पञ्चस्वरायां—नवाब्दं चलते चन्द्रो राहुभौमौ रसे समे ।
शेषाश्चत्वारि वर्षाणि त्रिपताक्यामयं विधिरिति ॥८॥

भोग्यार्कांशान् मासारम्भो भोग्याङ्गांशाल्लग्नाद्भावाः ।
द्रेष्काणाच्च प्रोक्तं देहं दुष्टैर्दृष्टं कष्टस्थानम् ॥ ६० ॥

मासारंभादिज्ञानार्थमाह भोग्यार्केति—भोग्यार्कांशाद् भोग्यो योऽर्कस्यांशस्तस्मात् मासारम्भो ज्ञेयः । भोग्याङ्गांशात् भोग्यो योऽङ्गस्य तनोरंशस्तस्मात् लग्नाद् भावास्तन्वादयो भवन्ति । द्रेष्काणाद्देहमङ्गविभागः प्रोक्तं कथितम् । दुष्टैर्ग्रहैर्दृष्टं स्थानं कष्टस्थानं दुःखस्थानं ज्ञेयम् ।

शीर्षादि लग्नादुदिते दृकाणे ।
स्याद्वै द्वितीये सुततस्तथोद्यम् ॥
एवं तृतीये गुरुतस्तु सर्वं ।
खगर्क्षयोगादपि लक्ष्ममानम् ॥ ६१ ॥

अथाङ्गविभागज्ञानाय द्रेष्काणत उपायमाह शीर्षादीति । जन्मलग्ने उदिते प्रथमे दृकाणे द्रेष्काणे सति लग्नात् शीर्षादिकण्ठान्तोऽङ्गविभागो ज्ञेयः। लग्ने द्वितीये द्रेष्काणेऽभ्युदिते सति सुततः पञ्चमभावतः शीर्षादिविभागो ज्ञेयः । एवं लग्ने तृतीये द्रेष्काणे ह्युदिते गुरुतो नवमभावात् सर्वं शीर्षादिविभागज्ञानं विन्द्यात् । तत्र पृष्ठोदयराशौ पृष्ठभागः शीर्षोदयराशावग्रभागो ज्ञेयः । एतत् प्रश्नाङ्गेऽपि ज्ञेयं ।

अत्रायं विशेषः यत्र जन्मकालिको गोचरगतश्च राहुरेकत्र भविष्यतः, अथवा यस्य भावस्याधिपतिश्छिद्रेश्वरेण युतः स्यात्तत्र तस्मिन्नेव क्षणे लक्ष्मादिकानामुत्पत्तिः स्यादिति ज्ञेयम् ॥

स्पष्टोऽर्कः शशिना युतो रविहतःशेषे च पापाः खगाः ।
कष्टं कोणगतेऽपि शोभनखगैर्युक्ते सदा शोभनम् ॥

जन्मोत्थैश्च खगैर्युतं हि ध्रुवकं भावोत्थकष्टं सुखं ।
स्वाभीष्टेऽपि समेऽथ मासजखगैर्योगादिनाद्यं फलम् ॥६॥

स्पष्टोऽर्क इति ॥ स्पष्टो जन्मकालिको राश्यंशादिरूपोऽर्कः सूर्यः शशिना जन्मकालिकेन स्पष्टचन्द्रेण युतो युक्तः कार्यः । ततो राश्यङ्के द्वादशाधिके सति रविहृतो द्वादशभक्तः कार्यः । ततो यच्छेषितं तस्मिन् राशौ तत्कोणगतेऽपि वा राशौ यदि पापाः क्रूराः खगा ग्रहा यदा गच्छंति तदा कष्टं दुःखं वाच्यम् । शोभनखगैः शुभग्रहैस्तेषु राशिषु योगे सति सदाऽवश्यं शोभनं सुखं भवति । तद्ध्रुवकं पूर्वानीताङ्को जन्मोत्थैर्जन्मकालिकैः खगैर्ग्रहैर्भावेशरूपैर्युक्तं सद् द्वादशभक्तेऽवशेषिते राशौ तत्कोणे वा शुभपापग्रहसमागमे सति तत्तद्भावसम्बन्धिशुभाशुभफलं भवति । स्वाभीष्टे स्वजिज्ञास्ये समे वर्षेऽपि मासजग्रहैर्योगादिनाद्यं फलं ज्ञातं भवति । यथात्रोदाहरणं ममैव ॥

जन्मकालिकस्पष्टग्रहाः ।

सू	चं०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०	रा०	के
१	३	७	१	९	२	४	२	८
११	१५	१३	११	२२	६	७	५	५

अत्र पंचमधनभावजिज्ञासायां विचारः क्रियते ।

	रा० अं०
लग्नेशो भौमः	७ । १३
पं० ध० गुरुः	९ । २२
लाभेशो बुधः	१ । ११
योगः—	६ । १६

अयं तुलाराशिरस्मात्रिकोणगतौ राशी १०।१६ तथा २।१६ जन्मसं० १९४७ ज्येष्ठकृष्ण ९ शनौ तदा गुरुर्मकरस्थ इदानीं जन्म संवत्सरे १९४७मध्ये गतवर्षाणि ९ युक्तानि ततः अग्रे क्रमशश्चत्वारि चत्वारि वर्षाणि योज्यानि । यथा जन्म संवत् १९४७ मध्ये गतवर्षाणि ९ युक्तानि जातोऽङ्कः १९५६ अग्रे क्रमशो वर्षचतुष्टय-योजनप्रकारस्तु कोष्टके निरीक्ष्यो यथा ।

संवत		गुरु राश्यादिः			वयोवर्षाणि
१९५६	...	६।१६	...	...	९
१९६०	...	१०।१६	...	...	१३
१९६४	...	२।१६	...	...	१७
१९६८	...	६।१६	...	...	२१
१९७२	...	१०।१६	...	...	२५
१९७६	...	२।१६	...	...	२९
१९८०	...	६।१६	...	...	३३
१९८४	...	१०।१६	...	...	३७
१९८८	...	२।१६	...	...	४१

अथाभीष्टवर्षमत्र ४१ एकचत्वारिंशत्तममस्ति । तदा गुरु-र्मिथुनस्थ आसीत् । अतः १९८८ संवत्सरस्य चैत्रशुक्ल ६ बुधे रोहिणीनक्षत्रे रवी राश्यादिः ११।११।२३।४३ अर्धरात्रौ अभवत् यतस्तास्मिन्नेवाहनि ४१ तमवर्षस्य ११ एकादश तमसामारम्भो जातोऽतस्तद्दिन एवोक्तश्लोकोक्तप्रकारेणेष्टप्राप्तिकालानयनं जातम् ।

यथा—

जन्म रविः	१।१.१
ज० चन्द्रः	३।१.५
ज० भौमः	७।१.३
ज० गुरुः	९।२२
योगः	१.०।१

अयं जन्मध्रुवाङ्कः

मासदिनोत्था ग्रहाः—

मास रविः	११।११
मा० चन्द्रः	१।२८।१९
मा० गुरुः	२।२१
मा० भौमः	३।५
योगः	७।३।१९

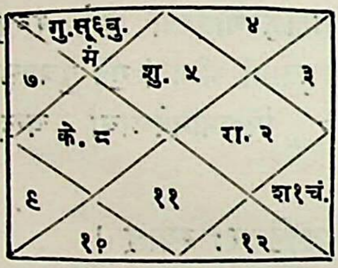
अस्मिन् ७।३।१९ मध्ये जन्मध्रुवाङ्को १०।१ युक्तस्तदा जातोङ्कः ५।४।१९ अयं कन्याराशिरस्मात्रिकोणगतौ राशी मकरः, ९।४।१९ तथा वृ१ः १।४।१९ एतानि धनपुत्रलाभयोः स्पष्टादिनानि, एषु यद्राशीशो जनुषि निर्बलः स्यात्तस्मिन्नुक्तफलं न स्यात् सबलत्वे तु स्यादेव । अतः संवत् १९८८ वैशाखकृष्णाष्टम्यां शुक्रे रव्युदयादिष्टघट्यादिषु ३९।५२ उदाहरणीभूतानां श्रीमतां गृहे पुत्रप्रसूतिरभूत्, तस्मिन्नेव दिने ४६।४० मिश्रमानवेलायां चन्द्रः ९।६।२५।३८ आसीत् ॥

स्वान्त्याधीशौ गुलिकसहितौ पाददृष्टिर्नरः स्यात् ।
पृष्ठर्क्षाणां यदि समुदयस्तारका वेत्ति वामम् ॥
शीर्षाद्यृक्षोदयभगतयोश्चोर्ध्वतोऽधोविकारः ।
शुक्रे चान्धे रविविधुयुते दुष्टगे दृग्विहीनः ॥ ६३ ॥

अथेदानीं नेत्रविकारज्ञानोपायमाह स्वान्त्याधीशेति ॥ स्वान्त्याधीशौ स्वं द्वितीयभावोऽन्त्यं द्वादशो भावोऽनयोरधीशौ स्वामिनौ गुलिकसहितौ पूर्वोक्तगुलिकेन सहितौ यदि स्यातां तदा जातो नरः पाददृष्टिरर्धार्द्धदृष्टिर्भवति । यदि तदानीं पृष्ठर्क्षाणां पृष्ठोदयसंज्ञक-

राशीनां मेषवृषकर्कधनुमकराणां मध्ये यस्य कस्य चिद्राशेः समुदयः स्यात्तर्हि तदा जातस्य नरस्य तारका अक्ष्णः कनीनिका वामं विपरीतं वेत्ति पश्यतीति यावत् । तथा तयोः स्वान्त्याधीशयोः शीर्षाग्रृक्षोदयभगतयोः शीर्षाग्रृक्षोदयभानि शीर्षोदयपृष्ठोदयादिवा-बलिनिशाबल्यादिराशिरूपाणि तत्र गतयोः प्राप्तयोः सतोरुपरि-भागेऽधोभागे रात्रावह्नि न्यूनाधिकादिरूपेण दृष्टिविकाराञ्जनयतः । तथा शुक्रे भार्गवेंऽब्धे रविविधुयुते सूर्यचन्द्रयुक्ते दुष्टगे षष्ठाष्टमद्वादश-भावस्थिते सति, अथवा त्रिकेशैराक्रान्ते सति जातो नरो दृग्विहीनो दृष्टिहीनोऽन्धो भवति । अत्र शीतलाव्याधिजन्यवामदृष्टिहीनस्य-उदाहरणम् सं. १९६७ शाके १८३२ गुर्जराश्विनकृष्णस्य ५ शुक्रे कृत्तिकाभे ॥ इष्ट ५७।०। रविः ५।६

जन्माङ्गम् ।



॥ ग्रहाः स्पष्टाः ॥

सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.
५	०	५	५	५	४	०	१
६॥	७	७	३॥	२७	२२	१३	१

जन्माङ्गेशो जन्मलग्नाद्यदा हि
यस्मिन्भावे नन्दभागे स्थितः स्यात् ।
तत्तद्भावोत्था च चिन्ताऽथ लग्ना-
त्तद्भावोत्था यद्गृहांशोदयः स्यात् ॥ ६४ ॥

प्रश्नकाले प्रष्टुर्हृदयगतचिन्ताज्ञानोपायार्थमाह जन्माङ्गेश इति ॥ प्रश्नकाले प्रष्टुर्जन्माङ्गेशो जन्मलग्नाधिपो जन्मलग्नाज्जन्म-कालीनलग्नात् यस्मिन्भावे यस्मिन्नन्दभागे नवमांशे च स्थितः

स्यात्तद्भावसम्बन्धिनी तन्नवमांशस्थितभावसम्बन्धिनी च तदा चिन्ता ज्ञेया । प्रकारान्तरमाह अथ लग्नादिति—अथ पक्षान्तरे जन्मलग्ने यन्नवमांशस्योदयः स्यात् तन्नवमांशसम्बन्धिराशिर्लग्नाद्यस्मिन्भावे स्यात्तद्भावोत्था चिन्ता ज्ञेया । एतत् प्रश्नकालादपि ज्ञेयम् ॥

लग्नाद्भावास्तदीशाः खलु खलखगतः पीडिताश्चोदयेशो ।
यस्मिन् भावे गतो वा गतमुरासि वदेद्भावतः पृच्छकस्य॥
प्रोक्तं चिन्हायुवर्णं ह्यवयवसहितं यत्तु पूर्वैस्तदेवाऽन्यद्ग्रन्थे-
भ्योऽवलोक्यं तनुधनसहजोत्पन्नजीवादिकं च ॥ ६५ ॥

लग्नाद्भावा इति । लग्नात् तनुभावादारभ्य भावा धनसहजाद्यः तदीशास्तेषां तनुधनादिभावानामीशाः स्वामिनो वा खलखगतः पापग्रहैः पीडिता आक्रान्ताश्चेत् स्युः । अत्र कालत्रयेऽपि यदा यदा पीड़िताः स्युस्तदा तदा विचार्य फलं कथयेदिति सूचितं भवति । उदयेशो लग्नेशः यस्मिन् भावे गतः स्यात्तत्तद्भावसम्बन्धेन पृच्छकस्योरसिगतं हृद्गतं भावं वदेत् । तत्कथनसाधनमाह प्रोक्तमिति । पूर्वैः पूर्वाचार्यैरवयवसहितं कंद्दगित्याद्यवयवविभागसहितं यत् चिन्हायुवर्णं चिह्नायुवर्णादिकं प्रोक्तं निबद्धं तत् तत्तद्ग्रन्थेभ्यो विलोक्यम् । तथा तनुधनसहजोत्पन्नजीवादिकं च तन्वादिभावजन्यं जीवधात्वादिभेदं च विचार्य फलं ब्रूयादिति शेषः ॥

लग्नाधीशः केन्द्रगः स्वात्मचिन्तां
केन्द्रादग्रे चेत्कुटुम्बोद्भवां च ।
तस्मादग्रे चेत्स्थितः स्यात्तदानीं चिन्तां
कुर्यादन्यसम्बन्धिनीं च ॥ ६६ ॥

अथेदानीं चिन्ताज्ञानादनु सा चिन्ता स्वीयाऽन्यसम्बन्धिनी वेति ज्ञानोपायमाह लग्नाधीश इति । लग्नाधीशो लग्नेश्वरः केन्द्रगश्चे-त्स्वात्मचिन्तां करोति । यदि स एव लग्नेशः केन्द्रादग्रे द्वितीयपञ्च-माष्टमैकादशभावे स्थितश्चेत्तदा स्वकुटुम्बोद्भवां चिन्तां करोति । तस्मादुक्तस्थानादग्रे तृतीयषष्ठनवमद्वादशभावस्थितो यदि स्यात्तदा-नीमन्यसम्बन्धिनीं स्वस्वकीयेतरसम्बन्धिनीं चिन्तां करोति ॥

यद्भागस्थौ देहदेहाधिपौ स्त-
स्तद्भागेशं राहुमन्देन्दुभौमाः ।
चेत्पश्येयुर्धातुचिन्तां, गुरुज्ञौ
जीवं, मूलं शुक्रसूर्यौ विधत्तः ॥ ६७ ॥

अथेदानीं धात्वादिभेदेन चिन्तितवस्तुज्ञानोपायमाह यद्भागस्था-वित्यादिना ॥ देहदेहाधिपौ लग्नलग्नेश्वरौ यद्भागस्थौ यन्नवांशस्थौ स्तस्तद्भागेशं तन्नवांशेश्वरं तद्राश्यधिपं वा राहुमन्देन्दुभौमा राहुशनिचन्द्रभौमाश्चेत्पश्येयुस्तर्हि धातुचिन्तां कुर्वन्ति । यदि गुरुज्ञौ गुरुबुधौ पश्यतस्तदा जीवं जीवचिन्तां विधत्तः । यदि शुक्रसूर्यौ पश्यतस्तर्हि मूलं मूलचिन्तां कुरुतः । तदानीं राशीश्वरं यदि भौमः पश्यति, नवांशाधिपं तु गुरुः पश्यति तदा धातुसम्बन्धवती जीवचिन्ता रुधिरास्थिमज्जादिधातुजा चिन्ता ज्ञेयेति दिक् ॥

मित्रे सौम्यनिरीक्षितौ स्वलवगौ शीतांशुदृष्टौ युतौ ।
प्रोक्तौ लग्नपकार्यपौ बलयुतौ चाऽन्योन्यभावाश्रितौ ॥
द्रेष्काणैकगतौ रसेन्दुविततैर्योगैर्विभेदक्रमै-
र्भविशाश्रयतश्च भावगुणतः कार्यस्य संसिद्धिदौ ॥ ६८ ॥

मित्रौ सौम्येति ॥ लग्नपकार्यपौ लग्नेश्वरकार्येश्वरौ मित्रे सुहृदौ परस्परं मित्रभूतौ, सौम्यनिरीक्षितौ शुभग्रहावलोकितौ, एवं शीतांशुदृष्टौ चन्द्रदृष्टौ युतौ सहितौ वा स्वलवगौ स्वे लवे आत्मनवमांशे गतौ प्राप्तौ, बलयुतौ बलवन्तौ सन्तावन्योन्यभावाश्रितावन्योन्यस्य परस्परस्य यो भावस्तमाश्रितौ, लग्नेशः कार्ये कार्येशो लग्न एवंरूपेण स्थितौ वा द्रेष्काणैकगतावेकस्मिन्नेव द्रेष्काणे स्थितौ, रसेन्दुविततैः षोडशप्रकारेण विस्तृतैर्योगैः कंबूलादिभिर्विभेदक्रमैर्भेदक्रमेण यथाभेदमिति यावत् । भावेशाश्रयतश्च भावगुणतस्तत्तद्भावसम्बन्धिजनद्वारा कार्यस्येष्टस्य संसिद्धिदौ सिद्धिप्रदौ भवतः ।

लग्नाधीशाधीश्वरेणापि चैवं ।
सौख्यायेशौ सौम्यदृष्टौ यदा वै ॥
तस्मिन्काले भावि वाच्यं हि कार्यं ।
दुष्टैरेवं नैव मिश्रैश्च बुध्यात् ॥ ६९ ॥

अन्यप्रकारमाह लग्नाधीशेत्यादि ॥ लग्नाधीशाधीश्वरेणापि लग्नाधीशो लग्नेश्वरस्तदधीश्वरो लग्नेश्वराधिष्ठितराशिस्वामी तेनाप्येवं पूर्वश्लोकोक्तप्रकारेण विचारः कार्यः । अथ पूर्वयोगे सत्यपि विशेषमाह सौख्यायेशाविति । सौख्यायेशौ चतुर्थैकादशभावाधीशौ यदा वै इतिनिश्चयेन सौम्यदृष्टौ शुभग्रहावलोकितौ स्यातां तस्मिन् काले तत् भावि कार्यं स्यादिति वाच्यम् । दुष्टैः पापग्रहैर्दृष्टौ चेत्तत्कार्यं न स्यात् । मिश्रैः शुभाशुभग्रहैर्दृष्टे सति स्वबुद्ध्या बलाबलं विविच्य फलं ब्रूयात् । लग्नेशाधिपेन कार्येशसुखेशलाभेशाधिपैरित्थशालारोह्यादिक्रमेण यथा योगस्तथा फलं ब्रूयादित्यपि ध्वनितम् ॥

यत्कालेऽन्यर्क्षविष्टो दिनमणितनयो लोकनीयस्तदेन्दुः ।
लौहं छिद्रान्त्यतुर्ये खलु नरभवशात् हैममाद्यायषष्ठे ॥
खत्रिद्यूने हि ताम्रं स्वसुतनवमगो राजतं वै क्रमेण ।
मृत्योःसाम्यं च कष्टं सुखसुमतिधनारोग्यदारादिसौख्यम् ७०

यत्काल इति । यत्काले यस्मिन् समये दिनमणितनयः शनिः अन्यर्क्षविष्टः स्वाक्रान्तराशिं परिहायान्यराशौ विशति, सः लोकनीयो विचारणीयः । विचारणीयविषयमाह तदेन्दुरिति । तदा शनेः राश्यन्तरगमनकाले नरभवशात् यस्य कस्य चिन्नरस्य भवशात् राशितः सकाशात् इन्दुश्चन्द्रो यदि छिद्रान्त्यतुर्येऽष्टमद्वादशचतुर्थस्थाने स्थितश्चेत्तर्हि लौहमायसं पादं जानीयात् । यद्यायषष्ठे लग्नैकादशषष्ठस्थाने स्थितश्चेत्तर्हि हैमं सुवर्णपादं जानीयात् । खत्रिद्यूने दशमतृतीयसप्तमस्थाने चेत्ताम्रं पादं तथा स्वसुतनवमगो द्वितीयपञ्चमनवमस्थाने स्थितश्चेद्राजतं पादं जानीयात् । एवं पादनिरूपणस्य फलं कथयति क्रमेणेति । पूर्वोक्तपादानां क्रमशो वक्ष्यमाणं फलं भवति, लौहपादे मृत्योः साम्यं, हैमपादे कष्टं, ताम्रराजतपादयोश्च सुखसुमतिधनारोग्यदारादिसौख्यं भवति । दुष्टराशिगतोऽपि चन्द्रो यदि शुभदृष्टश्चेदथवाऽष्टकवर्गेण स राशिर्यदि बली चेत्तर्ह्यशोभनं फलं न विधत्ते विपरीतं तु विपरीतं भवत्येवेति दिक् ॥

जन्मलग्नादपि ज्ञेयं पादोत्थं हि फलं बुधैः ।
भाव्यं हैमं सदा सौम्ये सुखसंपत्तिदायकम् ॥ ७१ ॥
सूर्याद्भौमात्तथा जीवाल्लग्नवत्पादजं फलं ।
आत्माधनकुटुम्बेषु पापे कष्टं विनिर्दिशेत् ॥ ७२ ॥

जन्माङ्गादिति ॥ एतत्पादोत्थं सुवर्णादिपादजं फलं जन्मलग्नादपि बुधैर्ज्ञेयम् । सौम्ये शुभग्रहे हैमं सुवर्णपादफलं सदा सुखसंपत्तिदायकं भवति । एतत्पादजं फलं लग्नवत् सूर्यात् भौमात्, जीवात् गुरोश्च राशिसंक्रमकाले आत्माधनकुटुम्बेषु शरीरधनकुटुम्बादिविषयेषु पापे कष्टं क्लेशं विनिर्दिशेत् । तथान्यान्यभावेशैर्विचारे कृतेऽपि तत्तद्भावसम्बन्धि शुभाशुभं फलं भवति ।

त्रिषडायस्थो मन्दो ददाति लाभं सुखं सुपूज्यत्वम् ।
उपचयधर्मविलग्ने तमोऽपि सौख्यं करोत्येव ॥ ७३ ॥

त्रिषडायस्थ इति । त्रिषडायस्थस्तृतीयषष्ठैकादशस्थानास्थितो मंदः शनिः लाभं सुखं सुपूज्यत्वं च ददाति । तमः राहुरपि उपचयधर्मविलग्ने तृतीयषष्ठदशमैकादशनवमादिगतः सौख्यं करोति ।

जायासुतधनहिबुकव्ययछिद्रस्थश्चरे यदा राहुः ।
नानातङ्काव्याधीन् पुच्छेऽप्येवं फलं चिन्त्यम् ॥ ७४ ॥

जायेति—जाया सप्तमं, सुतं पंचमं, धनं द्वितीयं, हिबुकं चतुर्थं, व्ययो द्वादशं, छिद्रं अष्टमं, एषु स्थानेषु स्थितो राहुर्यदा यस्मिन्काले, चरे गोचरे, भवतीति शेषः, तदा नानातङ्काव्याधीन् विविधभयरोगान् जनयतीति शेषः । पुच्छेऽपि केतावपि, उक्तस्थाने स्थिते सति एवं कथितं फलं आतङ्कव्याध्यादिरूपं चिन्त्यं ज्ञेयमित्यर्थः । यथा—सप्तमेशेन सम्बन्धकृत् राहुर्यदि सप्तमेऽष्टमे वा भावे गोचरे भवति तदा निष्कारणमेव दुःसंगाद्वा स्ववीर्यनाशं कारयति । पंचमे चेच्छूलव्याधिं करोति, चतुर्थे चेद्भवति तदा नरः सन्मित्रं न लभते, स्वदेशेऽपि प्रायो न तिष्ठति । धने व्यये वा राहुश्चेद्गच्छति तदा परुषभाषी, वृथाव्ययकारी च भवति, मुखे विकारवांश्च भवति । यदि तत्राष्टमेशयोगश्चेत्तदोक्तफलं द्विगुणं

भवति । उक्तान्यस्थानास्थितो राहुः किञ्चिच्छुभकरो भवति । यदि जन्मकालेऽपि उक्तभावस्थितश्चेत्पुनस्तत्रैव गोचरराहुयोगो भवति तदा द्विगुणं फलं भवति ।

जन्माङ्गं प्रविचार्य हायनगता मुंथाऽपि तद्वत्क्रमात् ।
मुन्थातो गणयेच्च मासदिवसान् यामान्घटीन्वै क्रमात् ॥
यद्राशौ हिमजोऽस्ति गोचरगतो दृष्टः शुभैर्वाऽशुभैः ।
तद्वत्तस्य समादिजं ध्रुवफलं प्रश्नाङ्गतो वा वदेत् ॥ ७५ ॥

जन्माङ्गमिति । जन्माङ्गं जन्मलग्नं, प्रविचार्य सम्यग्विचिन्त्य, वर्षगणनां कृत्वा जन्मचक्रे यस्मिन् भावे मुंथा स्यात्तस्मादेव क्रमान्मासदिवसप्रहरघटीकल्पनां कुर्यात् यथा—सार्द्धांशद्वयं प्रतिमासे मुंथाया गतिरस्ति तेन कलापंचकेन मासः, एकया कलया द्वादश घटिकाः इत्यादिरीत्या द्वादशभावेषु मुंथां चालयित्वा, जन्मकालीन-गोचरस्थग्रहयोगवशेन तथा तात्कालिकचन्द्रो यस्मिन् राशौ स्यात् तथा यादृशैः शुभाशुभैर्ग्रहैर्दृष्टः स्यात् तेन च तद्वत् शुभाशुभरूपं फलं वर्षमासदिनादिसंबन्धिभावजं भावि वाच्यम् । एवं प्रश्नाङ्गतोऽपि उक्तप्रकारेण भावफलं ज्ञेयम् ।

पक्षौ चिन्त्यौ दिनेशा,त्तिथिरथ निशिनाद्धश्वरान्मासजातं।
मुंथेशादेव वर्षे, क्षणिकजनिभगस्थग्रहाणां हि योगात् ॥
नेष्टश्रेष्ठादिसर्वं फलमथ विधुभात्पंचनाडीक्रमेण ।
भुक्तं वा भावि वाच्यं, नगनखभमुखात्सूनृतज्ञैःप्रवीणैः ७६

पक्षाविति । दिनेशात्सूर्यात् पक्षौ कृष्णशुक्लरूपौ चिन्त्यौ ज्ञेयौ, यथा—जन्मचक्रे गोचरगतः सूर्यः यद्भावगतः स्यात्ततः सप्तमभावपर्यन्तं शुक्लपक्षः, सप्तमभावात् गोचरगतसूर्यराशिपर्यन्तं

कृष्णपक्ष इति ज्ञेयम् । निशिनाचन्द्रात् तिथिर्दिनं, यथा सूर्याद्यस्मिन् भावे चन्द्रः स्यात्ततः सपाददिनद्वयानुपातेन तिथिज्ञानं कुर्यात् । भेश्वरात् राशीशान्मासज्ञानं कार्यं, यथा—राशीशः शनिश्चन्द्रो वाऽस्तु तस्य प्रतिमासं एकैकभावचालनकल्पनां कृत्वा तदनुसारेण मासं निश्चिनुयात् । मुंथेशान्मुथाक्रान्तराशीश्वराद्वर्षज्ञानं कुर्यात् । यद्येते चत्वारः शुभैरशुभैर्मिश्रैर्वा ग्रहैर्दृष्टा भवंति, तथा तात्कालिकश्चन्द्रो नक्षत्रोदयमारभ्य पंचघटिकाक्रमेणोक्तग्रहैर्दृष्टो भवति, तदा प्रश्नकालिकोदयसम्बन्धिभावेन भुक्तं भावि वा सुखदुःखादि वाच्यम् ।

ताराज्ञानोपायमाह नगेति । जन्मनक्षत्राद्दिननक्षत्रं यत्संख्याकं भवति तन्नवभक्तं कार्यं, शेषे जन्मसंपदादितारा ज्ञेयाः । जन्मविपत्प्रत्यरि वधतारासु रोगिणो रोगजं दुःखं, राज्ञः शस्त्रघातादिजं, व्यापारिणो धनहानिरूपं दुःखं वक्तव्यम् । अन्यासु संपत्क्षेमसाधकमैत्रातिमैत्रतारासु शुभदृष्टासु सुखं वाच्यम् । एतत्सर्वं केवलं कुण्डलीचक्रेण वक्तुं शक्यं, तथापि गोचरग्रहसंमिश्रणेन स्पष्टतरं भवति ।

धनायतनुभाग्येशाश्चन्द्रयुक्ता धनादिगाः ।
चंद्रो वा गोचरे चैषां योगे स्थाने तु लाभदः ॥ ७७ ॥

धनेति । धनलाभलग्नभाग्याधिपाः चन्द्रेण युक्ताः सन्तः गोचरे धनलाभादिस्थानेषु यदा भवंति तदा लाभप्रदाः भवंति । एतज्जन्मप्रश्नवर्षेष्वपि विलोक्यम् । धनाद्यधिपानां चन्द्रेणेत्थशालयोगेऽपि लाभो भवति । यदि धनाद्युक्तभावाधिपा जन्मनि वीर्यवन्तः स्युस्तदा उक्तभावानां प्रतिदिने यदोदयस्तदा तदावश्यं लाभो भवति ।

द्वादशे वा सुखे वाऽपि धने वा दुष्टखेचरः ।
चौरो भवति संजातो नृपो वा निर्धनोऽपि वा ॥ ७८ ॥

द्वादश इति । द्वादशे व्यये, वा अथवा, सुखे चतुर्थे, वा धने द्वितीये, यदि दुष्टखेचरो दुष्टग्रहः स्यात्तस्मिन्योगे संजात उत्पन्नः नृपो राजा, निर्धनो दरिद्रो, वा भवतु तथापि स चौरो भवति । यदि तत्र कश्चिच्छुभग्रहोऽपि स्थितश्चेत्तदा अन्यैरलक्षितः सन् भोजनादिकरो एकान्तप्रियो वा भवति ।

त्रिकेशा धनराशिस्थाः पणद्यूतरता नराः ।
स्थिरर्क्षे कालवशतः शीघ्रे शीघ्ररता नराः ॥ ७९ ॥

त्रिकेशा इति । यस्य जन्मनि त्रिकेशाः षष्ठाष्टमद्वादशभावाधिपाः धनराशिस्थाः द्वितीयभावस्थिता भवंति, ते नराः पणद्यूतरताः भवंति । तत्र यदि द्वितीये स्थिरराशिस्तदा कालवशतः, शीघ्रे चरराशौ तत्रस्थे सति शीघ्ररताः भवंति । किन्तु यदि दशमाद्वितीयसप्तमेशाः वीर्यवन्तः केन्द्रस्थाः स्युस्तदा तेन द्यूतपणेन लाभ एव भवति । यदि द्वादशेशः पापश्चेद्व्यये वा पापग्रहश्चेत्तर्हि द्यूतेन कुबेरस्य निधिमपि रिक्ततां नयति ।

लाभेशः सबलो यत्र महालाभं वदेद्बुधः ।
व्ययेशः सबलो यत्र महाव्ययकरं वदेत् ॥ ८० ॥

लाभेश इति । यत्र यदा लाभेशो लाभभावाधीशः सबलः बलवान् तत्र महालाभं बुधः पंडितः वदेत् कथयेत् । यत्र व्ययेशो द्वादशेशः सबलस्तत्र महाव्ययकरं जनं वदेत् ॥ ८० ॥

पापे पापनिमित्तं च शुभे यज्ञादिसंभवम् ।
नवांशेऽपि सदाऽलोक्यं ज्योतिःशास्त्रविचक्षणैः ॥ ८१ ॥

पाप इति । पापे लाभेशे व्ययेशे वा सति, पापनिमित्तं लाभव्ययादिकं भवति । तस्मिन् लाभेशे व्ययेशे वा शुभे सति,

यज्ञादिसंभवं लाभव्ययादिकं भवति । एतदुक्तफलं ज्योतिःशास्त्रविचक्षणैर्गणकैः नवांशेऽपि नवांशकुंडल्यामपि सदा आलोक्यं, सूक्ष्मत्वात् ॥

धनेशं धनभावं वा कुजः पश्येद्यदा यदा ।
तदा तदा धनानां च हानिः स्यात्तस्करादिभिः ॥ ८२ ॥

धनेशमिति । यदा यदा गोचरे कुजो भौमः धनेशं द्वितीयेशं वा धनभावं पश्येदवलोकयेत् तदा तदा धनानां तस्करादिभिः चौराग्न्यादिभिः हानिर्नाशः स्यात् । अत्र कुजपदं उपलक्षणार्थं, तेन यावत्पापग्रहाणां ग्रहणम् । तेषां दृष्टिसत्त्वेऽपि धनक्षतिर्भवति । किन्तु तत् चन्द्रेणेत्थशालकाले वाच्यम् । यदि तत्र कश्चिच्छुभग्रहोऽपि इत्थशालं करोति तदा तस्करादिभिर्हृतमपि धनं पुनर्लभते ॥

धनेशश्चेच्चन्द्रसुतो मृगेन्द्रलवगो यदा ।
नोटहुन्डीचिक्कपत्रधनं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ ८३ ॥

धनेश इति—चौरप्रश्ने धनेशो यदि चन्द्रसुतो बुधः मृगेन्द्रलवगो मकरनवमांशस्थितश्चेत्तर्हि तद्धनं "नोट" "हुंडी" "चिक्क" इतिप्रसिद्धं पत्रात्मकं धनं ज्ञेयम् ।

अथवा सौम्यसंदृष्टो धनेशः सौम्यभागगः ।
शुष्कग्रहेणापि युतो चिक्कादीनां धनं वदेत् ॥ ८४ ॥

अथवेति—अथवा अन्योपि योगः यथा धनेशो यः कश्चिद्ग्रहः सौम्यभागगः मिथुनकन्यान्यतरस्य नवमांशगतः सौम्यसंदृष्टः बुधदृष्टो अन्येन केनचिच्छुष्कग्रहेणापि दृष्टो भवति तदापि उक्तविधं धनं जानीयात् ।

प्राक् प्रत्यग् दक्षिणोदक् जलजलदतनुप्रेयसीभावतो दिक्
ज्ञातव्या वै धनानां निधिपशुतरुणीनाथयोः पाततश्च
लग्नाच्चन्द्रोपि यस्यां ककुभि च कथयेत् तत्र चौरस्य गेहम्
छिद्रेशो यत्र चेत्स्यात् हृतधनमपि वै तत्र तद्बोधनीयम् ८५

हृतधनस्य दिग्ज्ञानोपायं निरूपयति प्रागिति । जलजलदतनुप्रेयसीभावतः जलं चतुर्थं, जलदं दशमं, तनुर्लग्नम्, प्रेयसी सप्तमम्, एभ्यश्चतुर्भ्यो भावेभ्यः क्रमेण प्राक्, प्रत्यग्, दक्षिणा उदक्, पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरादिशो ज्ञातव्याः । धननिधिपशुतरुणीत्यादीनां भावेशा यत्र दिग्सम्बन्धिभावेषु स्थिताः स्युः तस्यां दिशि तद्धृतं धनादिकं ज्ञातव्यम् । उक्तभावचतुष्टयाभ्यन्तरवर्त्तिभावेभ्यो विदिशामाग्नेय्यादीनामपि विचारः कार्यः । यस्मिन् दिग्त्रिभागे धनादीशः स्यात्तस्माद्दिग्विभागात् तद्वस्तु हृतमिति कथयेत् ।

क्षणिकश्चंद्रो यस्यां दिशि उक्तविधिना भवेत्तस्यां चौरस्य गेहं वदेत्। यत्र छिद्रेशः स्यात्तत्र तद्हृतं धनमस्तीति बोध्यम् । यो ग्रहः क्षुतदृष्ट्या धनेशं पश्यति स एव चौरो ज्ञेयः । केचित् सप्तमेशमपि चौरं कथयन्ति ।

दिग्ज्ञाने तनुदशमसप्तमचतुर्थभावेषु ग्रन्थान्तरे क्रमेण पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरा दिशः कथिताः तदुच्चावचभागे ग्राह्याः तथैवानुभवसिद्धत्वात् । मेषकुलीरतुलालिघटैः प्रागित्यादि बृहज्जातकीयोक्तिस्तु वास्तौ द्वारादिज्ञानपरा ।

धनेशो यावति नवांशे स्थितः स्यात्तेऽप्युदिताश्चेत्तावती धनसंख्या दशशतोत्तरा दशमेशसम्बंधवशाज्ज्ञेया । उदितद्रेष्काणेशास्तत्सम्बंधिनश्चौरास्तन्मित्राणि च भवन्ति । पुनश्च नरपतौ—

"कोष्ठाक्षरगतो ज्ञेयश्चन्द्रस्तत्कालसम्भवः ।
तदधीनं फलं सर्वं लाभालाभं जयाजयम् ॥ १ ॥

भयातनाडिका धिष्ण्यै २७ राहता भोगभाजिताः ।
पुनश्च गतऋक्षेण युक्तस्तत्कालचन्द्रमाः ॥ २ ॥
क्रूरक्षेत्राक्षरे चन्द्रे न शुभं सर्वकर्मसु ।
शुभक्षेत्रे शुभं सर्वं प्रस्तारे चन्द्रनिर्णयः ॥ ३ ॥
नाडीफलौ यशौ वर्गौ दिने वर्गफलोदयः ॥
कपक्षेण च मासेन टवर्गेण ऋतुं वदेत् ॥ ४ ॥
अयने तपवर्गेण फलं ब्रूयाद्विचक्षणः ।
अंशकेनांशकं गुण्यं ध्रुवयुक्तं कृतं पुनः ॥ ५ ॥
स्वगुणैर्गुणयेत्पश्चान्मूलांकैर्भाजयेत्ततः" ॥
अथ ध्रुवांकाः यथा—

"चतुःस्था मुनयः ।७।७।७।७ । सूर्याः १२ सप्त ७ नन्दा ९ गुणेषवः ५३॥
मासाः १२ शैलाः ७ इना १२ स्ततत्रा २५ राशीनां च ध्रुवा इमे॥१॥
गुणाः ३ शैलाः ७ युगाः ५ पंच ५ सप्त ७ पंचा ५ द्रयो ७ युगाः ४॥
नागा ८ वाणा ५ रसा ६ भूता ५ मेषादेरंशका मताः ॥ २ ॥
तिथि १२ नेत्रा २ ग्नि ३ खतर्क ६० नेत्रा२ ग्नि ३ नेत्र२बाणभूः१५॥
नेत्र २ सूर्य १२ रवि १२ नेत्रे २ मेषादेर्गुणका मताः ॥ ३ ॥
शैला ७ नंदा ९ रसा ६ बाणा ५ नदा ९ शैला ७ युगा४दश१०॥
इनाः १२ सप्त ७ रसा ६ भूता ५ मूलांकाश्च उदाहृताः ॥ ४ ॥
प्रश्नकाले विवाहे च याने जन्मनि संगरे ॥
शशांकस्य फलं श्रेष्ठं सर्वशास्त्रेषु गोपितमिति ॥ ५ ॥

हर्म्यादौ द्रव्यनष्टे दशहततनुभे मूलमध्योच्चभागं ।
गर्त्ते वाऽऽच्छादितादीन् स्थिरचरवशतः पृष्ठजर्क्षोदयं चेत् ॥
द्रेष्काणेशो बलिष्ठो द्विगुणितगृहगं भागमाहुः परर्क्षे
शीर्षाद्यारभ्य सर्वं खगगुणवशतोऽधस्तनादौ विचार्यम् ८६

हर्म्यादाविति । हर्म्यादौ गृहादौ द्रव्यनष्टे, द्रव्यस्य धनादिरूपद्रव्यस्य नष्टे अदर्शने चौरादिभिर्हृते वा दशहृततनुभे तनुभे लग्नराशौ दशभिर्हृते भक्ते सति अर्थात् द्रेष्काणकल्पनां कृत्वा, स्थिरचरवशतः राशीनां स्थिरादिभेदवशेन चेद्यदि लग्ने पृष्ठजर्क्षोदयः पृष्ठोदयराशेरुदयः स्यात्तदा गृहस्य मूलं अधोभागं जानीयात्, एवं तथाविधे लग्ने द्वितीयद्रेष्काणश्चेत्तदा गृहमध्यभागं तृतीये उपरितनभागं कल्पयेत् । यदि तत्र द्रेष्काणेशः स्वयं छिद्रेशोऽष्टमेशोऽष्टमेशसम्बन्धवान्वा स्यात्तदा गृहाभ्यन्तरे भूमेरधो धनादिगुप्त्यर्थं "तहखाना" "संच" इत्यादिनाम्ना लोकप्रसिद्धं भागं तथा च तस्य ग्रहाणां नीचोच्चादिभेदेन गभीरतादिज्ञानं कुर्यात् । स्थिरलग्ने आच्छादितभूभागं, चरेऽनाच्छादितभूमिं, द्विस्वभावे मिश्रितभूभागं जानीयात् । द्रेष्काणेशो बलिष्ठो यदि बलवान् स्यात् तदा गृहगं उक्तप्रकारेण निश्चितं भागं द्वित्रिगुणं जानीयात् परर्क्षे शीर्षोदयलग्ने शीर्षादिभागं आदौ प्रथमद्रेष्काणे गृहस्योच्चभागं, द्वितीये मध्यमं, तृतीयेऽधोभागं च ज्ञात्वा फलं कथयेत् । "अलेमारी" "पेटी" "आला" "चौकी" इत्यादि सर्वमपि सम्यग्विचार्य ग्रहदृष्टिवशात् कथयेत् । उक्तं च "तिर्यगूर्ध्वदृशौ बुधसितौ भौमार्कौ व्योमदर्शिनावित्यादिना" एवमेव उक्तप्रकारेण देहधृतवस्त्रभागकल्पनाऽपि कर्त्तव्या ।

उपयोगित्वादत्रान्यग्रन्थस्थोऽपि किंचित्तत्सम्बन्धी विषयोऽत्रोद्धृयते । यथा नरपतौ—

"क्रूरक्षेत्रगते चंद्रे विद्याच्चौरस्य सम्भवः ।
अवेधे सौम्यवेधे च नष्टं चौरविवर्जितम् ॥ १ ॥
यत्संख्याः खेचराः क्रूराश्चन्द्रवेधे व्यवस्थिताः ।
तत्संख्यास्तस्करा ज्ञेयास्सहायाश्चान्तराक्षरैः ॥ २ ॥

रूपं द्रेष्काणरूपेण तस्करस्य प्रजायते ।
द्रेष्काणक्रमतो ज्ञेयाः कृशमध्यबलाधिकाः ॥ ३ ॥
पङ्क्तियुक्त्या लिखेद्वर्णान् संख्यययाष्टोत्तरं शतम् ।
सर्पाकारो भवेद्द्रेष्वस्तेन नामानि साधयेत् ॥ ४ ॥
उदयास्तमयं द्रव्यं चौरनाम रसातले ।
दशमे च धनस्थानमेवं नामत्रयं भवेत् ॥ ५ ॥
वर्गांशका तु भूमानमष्टहस्त निवर्त्तनम् ।
अर्धक्रोशं तथा क्रोशं द्विक्रोशं योजनादिकम् ॥ ६ ॥
दण्डाहपक्षमासर्त्तुषण्मासाब्दाः शुभास्तिके ।
वर्गाक्षरगते चन्द्रे वर्णाश्चैकान्तरक्रमात् ॥
यदुक्तं पुस्तकेन्द्रेण ज्ञानं तत्कालचन्द्रवत्" ॥ ७ ॥

पुनश्च चौरादेर्नामज्ञानोपायस्तत्रैव—

वर्गोत्तमीयश्च नवांशराशौ नवांशनाथे द्विगुणो हि वर्णः ।
वक्रोच्चसंस्थे त्रिगुणो ग्रहस्य त्रिघ्नो सकृद्द्वित्रिगुणादिलाभे ॥१॥
नीचास्तसंस्थस्य नवांशपस्य वर्णस्य लाभेऽपि वदन्ति हानिम् ।
नामादिवर्णैः परिपाठलब्धैस्त्रिपंचसप्तद्विचतुर्थषष्ठैः ॥ २ ॥
द्व्यक्षरं समचरान्तरोदये त्र्यक्षरं विषमचरांशसंस्थिते ।
नाम चास्य चतुरक्षरं स्थिरे निश्चयादसमके षडक्षरम् ॥ ३ ॥
आद्ये द्वितीये त्रिचतुःपदेषु वर्णाः क्रमेणैव नियोजनीयाः ॥
विलग्नतोयास्तनभस्थलेभ्यः प्राप्ता यथा नामनि दैवविद्भिः ॥४॥

जयलक्ष्म्यां यथा—

कचौटयावश्विनीषु भरण्यांघ्रिष्वठो छखौ ।
तपौ फथौ कृत्तिकासु रोहिणीषु गजौ डरौ ॥ १ ॥
आढौ झघौ मृगे देयौ शिवे देयौ दवौ मधौ ।
ङञौ णलावदितिभे पुष्ये इटचकावपि ॥ २ ॥

नमौ पतौ सर्पभे च कथितं गणकोत्तमैः ।
पैत्रे खछौ ठवौ देयौ भगे ईडौ जगौ पुनः ॥ ३ ॥
थफौ वदावर्यमणि हस्तर्क्षे तु धझौ ढशौ ।
उणौ बङौ तु चित्रायां स्वात्यर्क्षे तु धभौ मनौ ॥ ४ ॥
कचौ टवौ द्विदैवर्क्षे मैत्रे ऊठछखाः स्मृताः ।
तपौ फथौ शाक्रभेषु मूलर्क्षे तु गञौ डसौ ॥ ५ ॥
एढौ झघौ वारिभे च वैश्वदेवे दवौ भधौ ।
ङञौ णहौ वैष्णवर्क्षे धनिष्ठाभे तु ऐटचकाः ॥ ६ ॥
नमौ पतौ शतभिषाजि पूभाख्ये तु खछौ ठयौ ।
ओडौ जगौ अहिर्बुध्न्ये पौष्णर्क्षे तु थफौ वदाविति॥ ७ ॥"

वस्तुतस्तु द्वादशराशीषु—मेषवृश्चिकौ क्रमेण कवर्गेण, वृषतुले चवर्गेण, मिथुनकन्ये टवर्गेण, कर्के यवर्गेण, सिंहो अवर्गस्वरेण, धनमीनयोः तवर्गेण, मकरकुम्भौ पवर्गेण, नवांशाः संलिखेत् ॥

॥ तथा चक्रे स्पष्टम् ॥

मे	वृ	मि	क	सिं	कं	तु	वृ	ध	म	कुं	मी	
क	प	झ	ल	ख	फ	ञ	ष	ग	व	च	य	
च	फ	घ	इ	छ	व	ङ	उ	ज	भ	क	ऐ	
ट	थ	द	ट	ठ	द	ध	ठ	ड	ध	न	ड	
य	ग	व	च	व	ध	भ	छ	स	ङ	म	ज	
अ	ज	भ	क	ई	झ	म	ख	ऊ	ञ	प	ग	
ठ	ड	ध	न	ड	ढ	न	त	ढ	ण	त	थ	
छ	र	ङ	म	ज	श	क	प	झ	ह	ख	फ	
ख	आ	ञ	प	ग	उ	च	फ	घ	ए	छ	व	
त	ढ	ण	त	थ	ण	ट	थ	द	ट	ठ	द	
३	७	४	५	७	५	७	४	८	५	६	५	अंशध्रुवांकाः
७	७	७	७	१२	७	९	५३	१२	७	१२	२५	राशिध्रुवांकाः

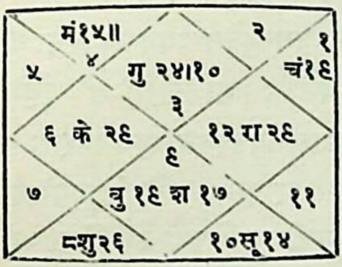
एतेषां वर्णानां क्रमस्तत्रैव—

"मेषादिराशयो लेख्यास्तिर्यक् प्रथमपंक्तिषु ।
नवांशराशयश्चाधो नवधा सर्व राशिषु ॥ १ ॥
कवर्ग नवधा लिख्य कोष्ठके प्रथमेऽष्टमे ।
द्वितीये सप्तमे चाद्या न्यसेत् टाद्यास्त्रिषष्ठके ॥ २ ॥
यशवर्गौ चतुर्थे तु अवर्ग पंचमे तथा ।
नवद्वादशके ताद्याः शेषे पाद्याः प्रकीर्तिता इति ॥ ३ ॥"

॥ उदाहरणम् ॥

श्रीवैक्रमीय सं० १९८७ माघे शुक्ले ८ भौमे घ. १५।५९ भरणीभे ४९।१० शुभयोगे २८।५० सूर्यः ९।१४।१ चन्द्रः ०।१९ इष्टम् २५।१ एतत्समये श्रीहरीरामजीकृतो निधिप्रश्नः लग्नम् २।९

॥ प्रश्न लग्नम् ॥

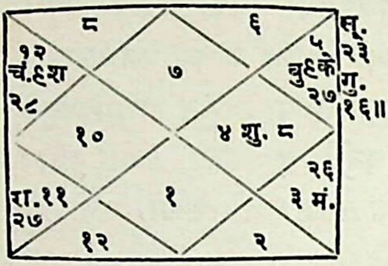


अत्र निधीशो बुधः सप्तमगः द्वितीयद्रेष्काणेऽस्ति । अतो गृहस्य द्वितीयविभागे उत्तराङ्गणे धनस्थितिर्ज्ञेया शनेः सान्निध्यादन्धकारे सुवर्णस्य भूषणम्, धनेशश्चंद्रः कन्यानवमांशगतस्तेन मणिबन्धभूषणम् । गुरुदृष्टत्वात् पुष्परागरत्नजटितम् ।

अथ चौरप्रश्नोदाहरणम् । सं० १९८९ भाद्रपदशुक्लस्य ९ शुक्रे १।० परतः दशम्यां मूलभे ११।५४ आयुष्मान्योगे २६।२८ इष्टम् ८।१२ लग्नम् ६।७ रविः ४।२३। चंद्रः ८।१२ भयातं ५३।४ भभोगः ५६।४६ । अथ भयातपलानि ३१८४ नक्षत्रसंख्या २७ तया गुणितानि जातानि ८५९६८ । भभोगपलैः ३४०६ हृतानि लब्धनक्षत्राणि २५।१० गतर्क्षे १८।५७ मध्ये योजितानि ततः प्राप्तं ४४।७ अस्य सप्तविंशतितोऽधिकत्वात् ततो हीनं जातं १७।७ अयं

ज्येष्ठानक्षत्रस्य प्रथमचरणः चन्द्रस्तत्रास्ति तेन तकाराक्षरः प्राप्तः ।

चौरप्रश्नकुण्डलीयम् ६।७



अथैकस्मिन्समये मम वस्तु नष्टं तत् केन हृतं कदा प्राप्तिर्भविष्यतीति प्रश्नस्तत्र लग्नं तुला धननवमांशोदयः नवमांशेशो गुरुः सिंहराशौ स्थितस्तेन धातुप्रश्नः। लग्नात्तृतीयभावांशत्वात् भ्रातृसम्बन्धश्च षट्पंचाशिकोक्तेः "अंशकाज्ज्ञायते द्रव्यमिति" तथा "भ्राता सहजस्थितैर्ग्रहैर्लग्नादित्यादिभिः एतत् स्पष्टम्। अस्मिन् ग्रन्थे जन्मांगेशइति श्लोकेनात्र लग्नेशो दशमस्थो भृगुः कन्यांशगतस्तेन व्ययसम्बन्धः। "धनेशं धनभावमिति पद्येनात्र भौमो धनेशः शनिचंद्राभ्यां दृष्टो मिथुने वर्गोत्तमीयनन्दांशे गतस्तदीशो बुधश्चास्तंगतस्तेन नष्टधनप्रश्नः। धनेशस्य सौम्यभागे गतत्वात् "नोट" इति भाषायां प्रसिद्धं द्रव्यम्। मिथुनाधीशे निर्बले षष्ठेशेन युते च अस्यतृतीयराशिरूपत्वेन त्रिंशद्रूप्यकात्मकद्रव्यस्य हानिर्जाता। अत्र दिवैव भार्या ज्ञेया इति सम्बन्धात् भार्याद्वारेण गतामिति। ज्येष्ठानक्षत्रस्य प्रथमाक्षरस्तकारः प्राप्तः तस्मात् सप्तमराशेः वृषस्य षष्ठाक्षरो रकारश्चौरनामाद्याक्षरस्तेन रामदेव इत्यादि नाम प्राप्तम्। उक्तं च " चंद्रादस्ते चौरनाम " इति नरपतौ।

केचित्तु प्रथमद्रेष्क्कोणोदये तन्नक्षत्रोदयपादात्, द्वितीयद्रेष्क्काणोदये पंचमभावस्य नक्षत्रोदयपादात्, तृतीयस्योदये नवमभावस्य नक्षत्रोदयपादादवकहडचक्रानुसारेणापि चौरनाम जानन्ति।

क्रूरक्षेत्रे शुभनवमांशाक्षरे चंद्रस्थितेस्तकारः प्राप्तः स त्वयनात्मक-कालबोधकः ।

अंशकेनांशकं गुण्यमित्यस्योदाहरणम्—

धननवमांशगुणकः ८ अनेन नवमांशसंख्या ६ गुणिता गुणनफलं ४८ ध्रुवाङ्केन १२ युतं जातोऽङ्कः ६० । स्वगुणकै २ र्गुणितं १२० मूलाङ्कै १२ र्भाजितं फलं १० शेषं ० तेन १० मासोत्तरं प्रश्नदिनात् वस्तुप्राप्तिर्भविष्यति इति प्राप्तम्, परन्तु प्रश्नकुण्डल्यां लाभगो गुरुः चंद्रं पूर्णदृष्ट्या पश्यति शुक्रोऽपि दशमभावगतस्त्वर्द्ध-दृष्ट्या लग्नं पश्यति तस्मात् गणितागतकालादनुपातवशात्त्रिमासादूर्ध्वं द्रव्यप्राप्तिर्भविष्यति । उक्तं च—"करोति वक्रमावृत्तेः कालं तं ब्रुवते परे" अतोऽत्र सप्तमेशो भौमः मार्गशीर्षकृष्णनवम्यां भौमे चन्द्रेण सह मुथशिलं करिष्यति तस्मिन्नेव दिने धनप्राप्तिर्भविष्यतीति ज्ञेयम् ।

यदुक्तम् प्रश्नशिरोमणौ—

छिद्रेश्वरे सप्तममृत्युयाते प्रष्टुर्न लाभो द्रविणस्य चौरात् ।
मृतीश्वरद्रव्यपतीत्थशाले नष्टं हृतं वस्तु हि लभ्यमेव ॥१॥
धनेशे भानुलुप्तांशे चौरो लभ्यो न तद्धनम् ।
किञ्चित्समुदिते द्रव्यनाथे लभ्यं धनं लघु ॥ २ ॥
कर्माष्टेशेत्थशालेन राजा चौरस्य पक्षकृत् ।
क्रूरेत्थशाले हिमगौ नूनं चौरो न चान्यथा ॥ ३ ॥
अलग्नेशदृष्टं धनं वोदयं चेत् खलाभेऽपि न स्यादवाप्तिःकदाचित्।
तपोभ्रातृनाथेत्थशालं धनेशेऽन्यदेशे धनं चौरितं वा प्रनष्टम्॥
नष्टं यस्य स मूर्त्तीशो नष्टात्मा चेन्दुभास्करौ ।
जायेशश्चौररूपः स्यादेभ्यः कुर्याद्विनिश्चयम् ॥ ५ ॥
लग्नेशो मदने लग्ने वक्री जायेश्वरस्तदा ।
पुरःस्थमपि यद्वस्तु हृतं नैवाप्यते कदेति ॥ ६ ॥

इष्टो दशघ्नोऽर्कयुतः शरघ्नो बाणेन्दुयुक्तः शरपक्षभक्तः ।
लब्धं त्रिगुण्यं दालितञ्च शेषं चौरस्य संख्या कथिता जनानाम् ७
चौराङ्कं दशगुणं कृत्वा नवभिश्च समन्वितम् ।
सप्तदशभिर्हरेद्भागं शेषं चौरं विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥
नामाक्षरं षड्गुणितम् तत्कालघटिकान्वितम् ।
नामपंक्त्या हरेद्भागं शेषाङ्कं चौरनामकम् ॥ ९ ॥ इति ॥

यानेशश्चरभागगस्तुहिनगुर्भौमान्वितश्चेत् यदा ।
मोटररेलसुवन्हियाननिरतः खेशान्विते किं पुनः ? ॥
तेषां कार्यकलासु वै निपुणता साईकले सैन्धवे ।
सौम्ये मन्दयुते भखस्थचरभे व्योमादियाने रतः ॥८७॥

अथ कानिचिद्योगान्तराणि चाह यानेश इत्यादिना। यानेशश्चतुर्थभावेशश्चरभागगस्तथा तुहिनगुश्चन्द्रो यदा भौमान्वितश्चेत्तदा जातो नरो मोटररेलेत्यादिनाम्ना ख्यातेषु सुवह्नियानेषु आग्नेयवाहनेषु निरतः कुशलस्तत्तद्यानचालको निर्माता वा भवति। एतद्योगसत्वेऽपि खेशान्विते दशमेशेनापि सम्बन्धे सति पुनः किं वक्तव्यम्। एतादृशे सैन्धवे चन्द्रमसि सति साईकिलेत्येतन्नाम्नि वाहने निरतो भवति। सौम्ये बुधे मन्दयुते शनियुते सति व्योमादियाने आकाशगविमाने रतो भवति ॥

पक्षिदृकाणे जेप्लीने तारपीडे जलाहिगे ।
सूर्ये भौमेन युक्ते च वैद्युद्यन्त्रोभयात्मके ॥ ८८ ॥

पक्षिदृकाण इति ॥ ते पूर्वोक्तास्तुरीयेशादयो यदि पक्षिसंज्ञके दृकाणे द्रेष्काणे स्थिताः स्युस्तर्हि जेप्लीन इति ख्याते विमाने कुशलो भवति। तथा जलाहिगे जलसर्पान्यतरद्रेष्काणस्थे सति

तारपीड़े जलनिमज्जनशक्तनौकायां कुशलो भवति । सूर्ये सवितरि भौमेनारेण युक्ते सति तत्र यदि चतुर्थेशायुक्तानां योगोऽपि स्यात्तदा वैद्युद्यन्त्रोभयात्मके निष्णातो भवति । लाभेशेन लाभस्य कर्मेशेन कार्यस्य त्रिकेशैर्व्ययहान्यादेर्विचारः कार्यः । प्रायो यस्मिन् वर्षे उक्तयोगसम्बन्धस्तत्रापि समुद्रयात्रादियोगो भवति ॥

जलर्क्षगे रात्रिमणौ तुर्येशेन युते चरे ।
कविनापि युते पोतयाने नैपुण्यता भवेत् ॥ ८९ ॥

जलर्क्षग इति ॥ तुर्येशेन चतुर्थभावस्वामिना युते रात्रिमणौ चन्द्रे जलर्क्षगे जलराशिस्थे सति अथवा चरे चरराशौ तुर्येशेन चतुर्थेश्वरेणैवं कविना शुक्रेणापि युते रात्रिमणौ चन्द्रे सति तत्र जलराशिनवमांशे च पोतयाने प्लवे नैपुण्यता चालनादि-कुशलता भवति ॥

पातालेशः पापयुक्तस्त्रिकस्थः ।
पापैर्दृष्टो यादृशे राशिभागे ॥
तादृक् यानं वै नराणां निहन्तृ ।
चौराद्यैर्वा शस्त्रतश्चैव मृत्युः ॥ ९० ॥

पातालेश इति ॥ पातालेशश्चतुर्थेशः पापयुक्तस्तथा पापदृष्ट-स्त्रिकस्थः सन् यादृशे राशिभागे यादृशराशिसम्बन्धिनि यादृशे विभागे स्थितः स्यात्तादृक् यानं नराणां निहन्ता हानिजनकं मारकं वा भवति । अथवा चौराद्यैः शस्त्रादिघातेन मृत्युस्तत्तुल्यकष्टं वा भवति। अथवोदरजन्यविकारहेतुना शस्त्रक्रियादिकरणेन क्लेशो भवति॥

भौमो मन्देन युतो तुर्ये रवराश्मजप्रदाह्यानि ।
नृपयोगे चाकरवान् मृत्तैलं चेद्द्वांशके भागे ॥ ९१॥

भौम इति—मन्देन शनिना युक्तो भौमस्तुर्ये चतुर्थभावे चेद्र-वराश्मजमदाह्वानां रवरं वृक्षनिर्यासविशेषोऽत्यन्तोपयोगी पदार्थो-ऽश्मजमदाह्वानि यन्त्रादौ प्रज्वालनसाधनानि अश्माङ्गाराणि तेषां विक्रेता भवतीति शेषः । एतद्योगस्थितिदशायां राजयोगेऽपि सत्या-करवानुक्तद्रव्यखनिस्वामी भवति । यद्युक्तमन्दभौमाद्याः द्रवांशके जलचरराशिभागे स्थिताः स्युस्तदा मृत्तैलं केरासिननाम्ना ख्यातं यत्तैलं तद्विक्रेतादिः स्यात् ॥

विद्येशश्चरराशिगो गुरुभृगुज्ञैश्चापि युक्तो यदा ।
नानाशास्त्रविचारसारनिपुणो भौमेन शस्त्रादिषु ॥
मन्देनापि च तन्तुकार्यनिरतो स्वाकाशलाभाधिपै- ।
र्युक्तो वा नृपपूजितो धनपतिर्वक्री हि वागूदोषकृत् ॥ ९२ ॥

विद्येश इति । यदा यस्य जन्मकाले विद्येशः पंचमेशश्चर-राशिस्थः सन् गुरुभृगुज्ञैः जीवभार्गवबुधैश्चापि युक्तश्चतुर्विध-योगमध्यादन्यतमयोगसहितः स्यात्तर्हि नानाशास्त्रविचारसारनिपुणो भवति । भौमेन युक्तश्चेत् शस्त्रादिषु शस्त्राद्यायुधशास्त्रे निपुणो भवति । यदि मन्देन युतश्चेत्तन्तुकार्यं वस्त्रनिर्माणकार्यं तस्मि-न्निरतो भवति । स्वाकाशलाभाधिपैर्द्वितीयदशमलाभेश्वरैर्युक्तश्चेन्नृप-पूजितो राजमान्यो राजनीतिकुशलो वा भवति । यदि धनपतिर्द्विती-येशो धनस्थो वा वक्री विपरीतगतिमांश्चेद्वाग्दोषकृद्भवति । तस्मिन् स्वेशे क्रूरिते दुष्टराशौ शुभग्रहे शुभराशौ दुष्टग्रहे वा, स्वयं त्रिकेशे सति मूकः स्खलितवाक् दुष्टशब्देषु सद्भाषी सच्छब्देषु दुष्टभाषी अनर्गलप्रलापी च भवति । राशिविशेषसम्बन्धेन शीघ्रभाषी भवति । यदि द्वितीयभावे बुधभौमयोगश्चेत्तर्हि किं वक्तव्यम् ।

उदितः पुंग्रहदृष्टः सबलो नारीग्रहोऽपि सुतदः स्यात् ।
विपरीते युग्मलवे सुताधिपे पुंग्रहेऽपि नारी स्यात्॥९३॥

उदित इति—उदितः उदयं प्राप्तः, पुंग्रहदृष्टः पुरुषग्रहावलोकितः रविगुरुभौमावलोकितः, एतेन पुरुषनवांशादिस्थितिरपि ग्राह्या, एतादृशः सबलो नारीग्रहोऽपि सुतदः पुत्रदो भवति ॥ विपरीते तु समनवमांशगते पुंग्रहेऽस्ते स्त्रीग्रहदृष्टे विबले तु नारी कन्या भवति ।

जन्मपविधुमार्त्तण्डास्तत्पास्त्रिकगाश्च पीडिताः पुंसाम् ।
गददास्तनुहा धनहा नन्दांशस्थाश्च मुंथया सहिताः ॥९४॥

जन्मप इति । पुंसां नृणाम् जन्मपविधुमार्तण्डाः जन्मपो लग्नेश्वरः विधुश्चन्द्रो मार्तण्डः सूर्यस्ते सर्वे तत्पाः लग्नेशेन्दुसूर्याधिष्ठितराशिशाः मुंथया सहिताः सन्तः पापांशस्थाः पापग्रहाणां नवमांशस्थिताः पापाक्रान्ताः सन्तस्त्रिकगाः त्रिकस्थानस्थिताः स्युस्तर्हि ते गददा रोगप्रदाः तनुहाः शरीरनाशकराः धनहाश्च भवंति ॥

वर्षलग्नाधिपो मुन्थास्वामिना सहितो यदा ।
तस्मिन्वर्षे ध्रुवं कष्टं मृत्युतुल्यं न संशयः ॥९५॥

वर्षलग्नाधिप इति—वर्षलग्नेशो यदा यस्मिन्वर्षे मुन्थास्वामिना सहितो एकराश्यधिष्ठितो भवति तस्मिन्वर्षे ध्रुवं निश्चयेन कष्टं मृत्युतुल्यं भवतीत्यत्र न संशयः ।

कासश्वासो ज्वरं तन्द्रा पिपासा वमनादिकम् ।
शूलं विरेचनं मूर्च्छा लग्नेशेन्दू व्रणेशयुक् ॥९६॥

कासश्वास इति । लग्नेशो हिमांशुश्च व्रणेशयुक् रोगेशयुक्तो

भवति चेत् ग्रहराशियोगवशात् कासश्वासादि श्लोकोक्तदोषा भवन्ति। तत्र यद्भावेशसम्बन्धस्तत्संबधिन्यङ्गे रोगसम्भवो वाच्यः ।

खलाक्रान्तो यदा चन्द्रो लग्नेशः पापवीक्षितः ।
तत्तद्धातुभवो रोगः षष्ठेशो येन योगकृत् ॥ ९७ ॥

खलाक्रान्त इति–यदा चन्द्रः खलाक्रान्तः पापग्रहान्तःस्थो दृष्टो वा भवति लग्नेशः पापवीक्षितो भवति, तदा षष्ठेशो येन ग्रहेण भावेन वा योगकृत् सम्बन्धकर्त्ता भवति तद्ग्रहधातुसम्बन्धी रोगो वाच्यः ॥

अस्तंगते विलग्नेशे छिद्रेशः पापवीक्षितः ।
मुंथाचन्द्रौ तादृशौ चेत् तद्वर्षे निधनं भवेत् ॥९८॥

अस्तंगत इति–लग्नाधीशे अस्तंगते सूर्यसहिते छिद्रेशोऽष्टमेशः पापवीक्षितश्चेत् तथा मुन्थाचन्द्रावपि तादृशौ अस्तौ पापेक्षितौ वा भवतस्तस्मिन्वर्षे निधनं मरणं वाच्यम् ।

कर्मेशःसुखदेहधर्मधनधीभावेश्वरैःसंयुतो ।
येषां जन्मविधौ बलेन सहितो लग्नादिसद्भावगः॥
तेषां द्वारमुखे गजेन्द्रपटली मध्ये नृपेन्द्रावली ।
प्रान्ते रत्नविभूषिता सुरुचिरा श्यामावली शोभते ॥ ९९॥

अथ राजयोगमाह कर्मेश इति । येषां नृणाम् जन्मविधौ जन्मकाले कर्मेशो दशमेश्वरः सुखदेहधर्मधनधीभावेश्वरैः चतुर्थ लग्ननवमद्वितीयपंचमादयो ये भावास्तेषामीश्वरैः सहितो लग्नादिसद्भावगः स्यात् बलेन सहितः राशिगतियोगशुभदृष्ट्यादिना च सहितः सन् लग्नादिसद्भावगः स्यात् तेषां पुरुषाणां द्वारमुखे द्वारदेशे गजेन्द्रपटली गजेन्द्रसमूहः तथा मध्ये नृपेन्द्रा-

वली नृपश्रेष्ठसमूहः, प्रान्ते अन्तःपुरे रत्नविभूषिता रत्नजटिताऽलंकारालंकृता सुरुचिरा कमनीया श्यामावली युवतिजनपङ्क्तिः शोभते राजते ।

रामे खे रिपुलाभभे दिनमणिः सर्वार्थसंसिद्धिदः ।
सिध्यृद्धिस्वसुतव्ययेन्दुमदने तुर्येऽतिदुःखाकरः ॥
धर्मेऽब्धौ सुतरन्ध्ररिःफभगतश्चन्द्रो महाक्लेशदो ।
जन्मस्वायरिपुत्रिसप्तखगतो द्रव्यं मुदं वर्धते ॥१००॥

गोचरफलज्ञानायाह रामे ख इति । दिनमणिः सूर्यः रामे तृतीये, खे दशमे, रिपुलाभगे षष्ठैकादशगते सर्वार्थसंसिद्धिदो भवति। सिध्यृद्धिस्वसुतव्ययेन्दुमदने सिद्धिरष्टमम्, ऋद्धिर्नवमं, स्वं द्वितीयम्, सुतः पंचमम्, व्ययो द्वादशं, इन्दुर्लग्नम्, मदनं सप्तमम्, तेषु स्थितः सूर्यो अतिदुःखकरोऽतिपीडाकरो भवति । क्षीणो विधुश्चन्द्रः धर्मे नवमे, अब्धौ चतुर्थे तथा सुतरन्ध्ररिःफभगतः पंचमाष्टमद्वादशभावस्थितः क्लेशदः दुःखप्रदो भवति । पूर्णश्चन्द्रः जन्मस्वायरिपुत्रिसप्तखगतः लग्नधनलाभषष्ठतृतीयसप्तमदशमादिभावगतः द्रव्यं द्रविणं मुदं हर्षं वर्धते वर्धयतीति ।

पंचाऽब्ध्यायुहिमाद्रिजन्मनवखे रिःफे धने लग्नतः ।
चौराग्न्यादिविदेशकण्डुपिटकान् द्वेषाद् व्रणं लोहतः ॥
लाभे विक्रमशत्रुगः प्रकुरुते हेमाम्बरं गोधरे ।
स्वेदोत्थो बलवृद्धिदो नृपतितो मानं सुखारोग्यकृत् १०१

पंचाऽब्ध्येति । स्वेदोत्थो भौमः लग्नतः लग्नादारभ्य पंचाऽब्ध्यायुहिमाद्रिजन्मनवखे रिःफे धने लग्नतः अब्धिश्चतुर्थं, हिमाद्रिः सप्तमम् शेषं स्पष्टं एतेषु भावेषु स्थितः सन्, चौराग्न्यादि-

भयं, विदेशे गमनम्, कण्डूः खर्ज्जूः, पिटकान् विस्फोटकान्, तथा द्वेषात् अन्यप्रयुक्ताल्लोहतः शस्त्रादितः व्रणं करोति । लाभे एकादशे, विक्रमः तृतीयः, शत्रुः षष्ठः, तत्र गतः स्थित इति भावः हेमाम्बरं सुवर्णवस्त्रादिकम्, गोधरे धेनुभुवौ प्रकुरुते प्रापयति इति भावः । तथा बलवृद्धिदः नृपतितो राज्ञः सकाशात् मानं सत्कारं ददातीति । सुखारोग्यकृत् भवति यदि स भौमो अदुष्टश्चेत् ॥

लाभे छिद्रे चतुर्थे धनदशरिपुषु भ्रातृगो धर्मगो ज्ञः ।
सद्बुद्धिं मित्रसौख्यं नयहरियजनं काव्यतीर्थागमं च ॥
रिःफे द्यूने सदोषे सुततनुगुरुषु लोभमोहापमानम् ।
क्लेशं रोगं विरोधं रिपुगणकुलतः प्रेतबाधां विधत्ते ॥ १०२

लाभे छिद्र इति । लाभे छिद्रेऽष्टमे चतुर्थे धनदशरिपुषु स्पष्टं भ्रातृगस्तृतीयस्थः धर्मगो नवमगो ज्ञो बुधः सद्बुद्धिं, मित्रसौख्यं नयहरियजनं नयं नीतिमत्तां हरियजनं वासुदेवाराधनं, काव्यं कवित्वम्, तीर्थागमं तीर्थगमनं च कारयतीति शेषः । सदोषो बुधः त्रिकेशो वा क्रूराक्रांतत्वादिदोषयुक्तः रिःफे द्वादशे, द्यूने सप्तमे, सुततनुगुरुषु पंचमलग्नधर्मेषु गतः, लोभमोहापमानं, क्लेशं कष्टं, रोगं रिपुगणकुलतः विरोधं जनयति तथा प्रेतबाधां विधत्ते ।

धर्मायद्यूनपुत्रे धनभवनगते वाक्पतौ लाभवृद्धिम् ।
धीपुत्रस्त्रीसुखाप्तिं विजयनृपसुहृन्मानकीर्त्तिं तनोति ॥
मातुः खे जन्मषष्ठाष्टमसहजगतो द्वादशस्थो विदेशम् ।
दुःखं जायादिकानां यदि खलखगतःपीडितो जन्मकाले १०३

धर्मायेति । वाक्पतौ गुरौ धर्मायद्यूनपुत्रे नवमैकादशसप्तमपंचमे तथा धनभवनगते द्वितीयस्थे सति स गुरुः लाभवृद्धिं

धीपुत्रस्त्रीसुखाप्तिं, विजयनृपसुहृन्मानकीर्तिं तनोति विस्तारयति । मातुः खे जन्मषष्ठाष्टमसहजगतः द्वादशस्थश्च गुरुः विदेशं परदेशवासं जायादिकानां स्त्रीपुत्रादिकानां दुःखं असौख्यं करोति । यदि स गुरुः जन्मकाले खलखगतः पीडितश्चेत्तर्हि । अन्यथा सौख्यं ददाति ।

स्वाये धर्मेऽष्टमेऽङ्के तनयसुखभगे भार्गवे विक्रमस्थे ।
नानावामाविनोदं सुतकनकयशश्चाम्बराद्यैःसुवृद्धिम् ।
द्यूने खे शत्रुरिःफे कृतमपि विकृतं रोगनाशोद्भवौ तत् ।
शत्रूणां स्त्रीविरोधं धनयशहरणं मेहमोहं करोति ॥ १०४ ॥

स्वाये धर्म इति । भार्गवे शुक्रे स्वाये धर्मेऽष्टमेऽङ्के तनयसुखभगे स्पष्टम् तस्मिन्स्थाने गते सति, एवं विक्रमस्थे तृतीयस्थे सति, नानावामाविनोदं विविधस्त्रीसुरतं, सुतकनकयशः, तथाचाम्बराद्यैर्वस्त्रालंकारादिभिः सुवृद्धिं ऐश्वर्यवृद्धिं प्राप्नोति । तथा द्यूने खे शत्रुरिःफे स्पष्टम् शुक्रे गते सति कृतं सिद्धमपि कार्यं विकृतं विकारयुतं भवति । रोगनाशोद्भवौ आदौ रोगस्य नाशः पश्चात्पुनस्तदुद्भवः पुनरुत्पत्तिश्च भवति । शत्रूणां विरोधं, स्त्रीविरोधं, धनयशोहरणं, तथा मेहमोहं मेहःप्रमेहः, मोहमज्ञानं करोति विदधाति ।

केन्द्रायुर्व्ययधर्मबुद्धिधनभे तीक्ष्णांशुपुत्रे गते ।
लोहे वा कनके पदे नलमिवात्यन्तं हि कष्टं लभेत् ॥
मत्स्या हस्तधृता गताः खगहृतं वस्त्रं क्षुधार्त्ता प्रिया ।
त्यक्त्वा तक्षकदंशितोश्वशरणो जातं सुतुष्टे सुखम् ॥ १०५ ॥

केन्द्रेति । तीक्ष्णांशुपुत्रे शनैश्चरे केन्द्रायुर्व्ययधर्मबुद्धिधनभे स्पष्टम् एतेषु भेषु स्थानेषु गते प्राप्ते सति, तत्रापि लौहे

कनके पदे स्थितश्चेन्नरः नलमिव निषधराजमिवात्यन्तं कष्टं दुःखं लभेत् प्राप्नुयात्, नलेन प्राप्तकष्टानि संक्षेपेण दर्शयति—हस्तधृताः, आहारार्थं धृता हस्तस्था अपि मत्स्याः गता नष्टाः । परिहितमेकमपि वस्त्रं खगहृतं पक्षिणाऽपहृतं । प्रिया दमयन्ती क्षुधार्त्ता महाराज्ञी सत्यपि क्षुत्पीडिता त्यक्ता परित्यक्ता । तक्षकदंशितः तक्षकनाम्ना सर्पविशेषेण दष्टः । अश्वशरणः अश्वानां शरणं रक्षको जातः । एतानि महान्ति कष्टानि शनैश्चरकृपयोपभुक्तानि । पश्चात्तस्मिन् शनौ सुतुष्टे सति सुखं जातम् । अर्थात् अन्योपि जनः शनेः दुष्टस्थानस्थत्वेनैतादृशं क्षुत्पिपासादिरूपं दुःखं लभते । तस्मान्नलाख्यानश्रवणादिभिः सुखी स्यादिति ध्वनितम् ।

यत्र शुक्रस्तत्र रतिर्ज्ञानं जीवे बुधे कला ।
यत्र पापास्तत्र कष्टं तत्तज्ज्ञात्वगतं भवेत् ॥१०६॥

यत्र शुक्र इति—जन्मलग्नात्प्रश्नाद्वा कस्मिंश्चित् द्वादशभावे शुक्रो यत्र स्थितः स्यात् तत्र तात्कालिकचन्द्रयोगे रतिर्विलासादिकम्, जीवे ज्ञानं शास्त्राभ्यसनं मननं श्रवणं वा देवार्चनादिकम्, बुधे शिल्पादिकला क्रीडनकं वा लभते । यत्र पापाः क्रूरग्रहास्तत्र कष्टं भवति ।

यत्र मन्दस्तत्र सुप्तिरालस्यं भारवाहनम् ।
भौमे क्रोधादिकं दुष्टे रवौ पित्रादिसेवनम् ॥१०७॥

यत्र मन्द इति—यत्र मन्दः शनिस्तत्र सुप्तिरालस्यं भारवाहनं भवति । भौमे दुष्टे युद्धं, अन्यथाऽग्निसान्निध्यकर्म, रवौ पितृराजसेवादिकं भवतीति ज्ञेयम् ।

अथेदानीं ग्रहपीडोपशमार्थमुपायानाह—

मेषे पितृकृता शिरोर्त्तिविषमावान्तिर्ज्वराः स्युस्तदा ।
तद्दोषस्य निवृत्तये पितृगणश्राद्धं तिलैस्तर्पणम् ॥
अश्वत्थस्य परिक्रमा घृतघटोत्सर्गो गजेन्द्रस्तुति ।
र्विप्राणां प्रियपूजनं नरहरेराराधनं भक्तितः ॥ १०८ ॥

मेषे पितृकृतेति—पृच्छायां मेषे लग्ने सति पितृकृता पितृदोषजन्या शिरोर्त्ति ? विषमावान्तिज्वराः शिरोवेदनावमनज्वरादयो भवन्ति । शनिराहुबुधसम्बन्धेऽपि पितृदोषो भवति । तद्दोषस्य दुःखरूपस्य निवृत्तये पितृगणश्राद्धं तिलैः तत्सहितैर्जलैस्तपर्णम् अश्वत्थस्य वृक्षविशेषस्य परिक्रमा प्रदक्षिणा, घृतघटोत्सर्गः घृतपूर्णकुम्भदानम्, गजेन्द्रस्तुतिजपः, विप्राणां ब्राह्मणानां प्रियपूजनं प्रियवस्तुभिः सत्कारः, भक्तितो नरहरेः नृसिंहस्य भगवतः आराधनं यथारोगं यथाशक्ति न्यूनाधिकं कुर्यात् । उक्तं च योगचिंतामणौ श्रीसूर्यउवाच—

अधिव्याधिमतो जन्तोर्विरक्तिर्जायते यदा ।
दैवज्ञं स तदा प्राप्य निजदुःखं निवेदयेत् ॥ १ ॥
जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाध्यते ।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः ॥ २ ॥

पुनश्च—

कृतघ्नो जायते मर्त्यः कफवान् श्वासकासवान् ।
विघ्नकर्त्ता च भोक्तॄणां शोफी भवति मानवः ॥ १ ॥
मातृगामी भवेद्यस्तु लिंगं तस्य विनश्यति ।
स्रवद्गर्भा भवेत्सा तु बालकं हन्ति या पुरा ॥ २ ॥

ज्योतिःप्रकाशे—

यथोक्तमौषधस्नानं ग्रहाणामर्चनं तथा ।
ग्रहानुद्दिश्य होमो वा त्रिधा शांतिर्बुधैः स्मृता ॥ १ ॥
देवब्राह्मणवन्दनाद्गुरुवचः सम्पादनात्प्रत्यहं ।
साधूनामभिभाषणाच्छ्रुतिरवाच्छ्रेयः समाकर्णनात्
होमादध्वरदर्शनाच्छुचिमनोभावाज्जपाद्दानतो ।
नो कुर्वन्ति कदाचिदेव पुरुषस्यैवं ग्रहाः पीडनम् ॥ २ ॥

पुनश्च—

विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वान् व्यपोहति ॥ १ ॥
तीर्थायतनदेवाग्निगुरुवृद्धोपसर्पणैः ।
श्रद्धया पूजनैश्चापि सहसा शाम्यति ज्वरः ॥ २ ॥

तावुरिलग्ने डाकिनिदोषः श्रुतिनयने विकृतिर्ज्वरदाहौ ।
दुर्गायाः स्तवपठनात् हवनान्नश्यति रोगो हरिमनुजपनात् १०९

तावुरीति–तावुरिलग्ने वृषलग्ने डाकिनीजन्यो दोषो भवति । तत्र श्रुतिनयने कर्णनेत्रयोर्विकृतिर्विकारो, ज्वरदाहौ प्रसिद्धौ एतानि भवन्ति ते रोगाः दुर्गायाः स्तवपठनात्सप्तशतीपाठात् तथा शान्त्युक्तद्रव्यहवनात् हरिमनुजपनात् नृहरिमन्त्रजपात् नश्यन्ति ।

वैद्यजीवने–

चलदलतरुसेवा होममन्त्रौ त्रिनेत्र—
द्विजसुरगुरुपूजा कृष्णनाम्नां सहस्रम् ।
मणिधृतिपरिदानान्याशिषस्तापसानां
सकलमिदमरिष्टं स्पष्टमष्टज्वराणाम् ॥ १ ॥
सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरं ।
पूजयन् प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ २ ॥

मिथुने देवकृता कटिपीडा भ्रमतनुभङ्गे दुस्वप्नं च ।
गुग्गुलुहवनात् हनुमद्यजनाद्वेदश्रवणान्नश्यति रोगः ११०

मिथुन इति—मिथुने मिथुनलग्ने देवकृता पीडा ज्ञेया । तत्र कटिपीडा, भ्रमतनुभंगौ भ्रमो मूर्च्छा तनुभङ्गो गात्रभङ्गः तौ, दुःस्वप्नं निषिद्धस्वप्नं भवति। गुग्गुलुहवनात; गुग्गुलस्य वृक्षानिर्यासविशेषस्य हवनात; हनुमद्यजनात् यजनं नाम आराधनम् वेदश्रवणात, वेदानां ऋगादीनां श्रवणात, रोगः नश्यति ।

उक्तं च—

हनुमद्यजनं वक्ष्ये नराणां भीतिहारकम् ।
ज्वरादिदुष्टरोगाणां नाशनं शत्रुमर्दनम् ॥ १ ॥
हृदयं भगवान् ङेन्त आञ्जनेयमहाबलौ ।
तद्वह्निहाप्रियांतोऽयमनुरष्टादशाक्षरः ॥ २ ॥
मुनिरीश्वर एवास्यानुष्टुप् छन्दः समीरितम् ।
हनुमान्देवता बीजं हुँ शक्तिर्वन्हिवल्लभा ॥ ३ ॥
आञ्जनेयो रुद्रमूर्त्तिर्वायुपुत्रस्तथैवच ।
अग्निगर्भो रामदूतो ब्रह्मास्त्रविनिवारणः ॥ ४ ॥
एतैर्ङेन्तैः षडंगानि कृत्वा ध्यात्वा कपीश्वरम् ।
दहनतप्तसुवर्णसमप्रभं भयहरं हृदये विहिताञ्जलिम् ॥
श्रवणकुण्डलशोभिमुखांबुजं नमत वानरराजमिहाद्भुतम् ॥५॥
पूजयेद्वैष्णवे पीठे अयुतं पूजयेन्मनुम् ।
दशांशं पायसैर्वापि तिलैर्वापि हुनेद्धरिम् ॥ ६ ॥
ततः प्रयोगान्कुर्वीत कल्पोक्तानि च साधकः ।
अभिचारोत्थभूतोत्थज्वरे तन्मन्त्रमन्त्रितैः ।
भस्मभिः सलिलैर्वापि ताडयेद्रोगिणं क्रुधेति ॥ ७ ॥
इत्यादिकं सुदर्शनसंहितादौ द्रष्टव्यम् ॥

कर्के शाकिन्याः खलु दोषं मन्दाग्निर्हृदि शीर्षे पीडा ।
मुद्गौदनकनकादिकदानात् दोषो नश्यति शाकिनितोषात् १११

कर्क इति—कर्के कर्कलग्ने शाकिन्याः दोषं उपद्रवं जानीयात् । तत्र मन्दाग्निः अग्निमांद्यं हृदि शीर्षे पीडा व्यथा भवति । तदा मुद्गौदनकनकादिप्रसिद्धद्रव्यदानात् शाकिनितोषात् तंत्रोक्तविधानेन पूजनात् तज्जन्यदोषो नश्यति ।

कण्ठीरवेऽतिसारो वमनं पित्तप्रकोपनं च यदा ।
चिन्तामणेर्विधानं दुष्टक्लेशस्य नाशाय ॥ ११२ ॥

कण्ठीरवे इति—कण्ठीरवे सिंहे लग्ने प्रश्ने कृते अतिसारः मलस्यातिसरणं, वमनं वान्तिः, पित्तप्रकोपनं पित्तविकारो भवति । तदा दुष्टक्लेशस्य नाशायोपशमाय चिन्तामणेः मन्त्रविशेषस्य विधानं अनुष्ठानं कुर्यादिति ।

यथा शारदायाम्—

अग्निः संवर्तकादित्यरानिलौ षष्ठविन्दुमत् ।
चिन्तामणिरिति ख्यातं बीजं सर्वसमृद्धिदम् ॥ १ ॥

काश्यपो मुनिराख्यातश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
अर्द्धनारीश्वरः प्रोक्तो देवता जगतां पतिः ॥ २ ॥

रेफादिव्यंजनैः षड्भिः कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात् ॥ ३ ॥

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं पाशारुणोत्पलकपालत्रिशूलहस्तम् ।
अर्द्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम् ४

एकलक्षं जपेद्बीजमित्थं मन्त्री विचिन्तयेत् ।
अयुतं मधुना सिक्तैर्जुहुयात्तिलतन्दुलैः ॥ ५ ॥

पुनश्चाग्रे–

भूतार्त्तस्य स्मृतं मूर्ध्नि भूतमाशु विनाशयेत् ॥
बीजं चन्द्रगतं वीतं स्वरैः षोडशभिः क्रमात् ॥ १ ॥
गलत्परसुधापूर्णे नेत्रे ध्यातं रुजं हरेत् ।
एवमेव स्मृतं बीजं कुक्षौ शूलादिरोगहृत् ॥ २ ॥
स्फोटे विषज्वरे दाहे मोहे शीर्षगदे भ्रमे ।
बीजमेतत्तथा ध्यातं तत्तत्क्लेशविनाशनम् ॥ ३ ॥

कन्यालग्ने मूर्च्छाप्रलापतृष्णाभ्रमज्वराश्च यदा ।
भैरवयजनाद्धवनात् गुडूचिसंसेवनाच्छान्तिः ॥११३॥

कन्यालग्न इति–कन्यालग्ने प्रश्ने सति यदा मूर्च्छाप्रलापतृष्णाभ्रमज्वराश्च स्युस्तदा तेषां भैरवयजनात् गुडूचिहवनात् भक्षणाच्च शान्तिर्भवतीति । भैरवयजनं तु प्रसिद्धमेव ।

वणिजे क्षेत्रजपीडा तापो दुष्टः सुरक्तनेत्रे च ।
सुपूजितः क्षेत्रपतिर्दोषान्नाशयति दहनतूल इव ११४

वणिज इति–वणिजे तुलालग्ने क्षेत्रजपीडा क्षेत्रपालकोपसंभवा पीडा ज्ञेया। तत्र दुष्टो दोषयुक्तस्तापो ज्वरः, सुरक्तनेत्रे नेत्रयोरारक्तभावो भवति । सुपूजितः क्षेत्रपतिः क्षेत्रपालः, दहनतूल इव अग्निमध्यपतितकार्पासतन्तुरिव दोषान्नाशयति ।

शारदायां–वर्णान्त्यमौ बिन्दुयुक्तं क्षेत्रपालाय हृन्मनुः ।
ताराद्यो वसुवर्णोऽयं क्षेत्रपालस्य कीर्त्तितः ॥ १ ॥
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडंगान्न्यस्य यो जपेत् ।
ऋषिर्ब्रह्मा भवेदस्य गायत्रं छन्द ईरितम् ॥ २ ॥
क्षेत्रपालो देवता च लायेति शक्तिरीरितः ।

नीलांजनाद्रिनिभमूर्धपिशंगकेशं वृत्तोग्रलोचनमुदान्तगदाकपालम् ।
आशाम्बरं भुजगभूषणमुग्रदंष्ट्रं क्षेत्रेशमद्भुततनुं प्रणमामि देवम् ३

लक्षमेकं जपेन्मंत्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ।
चरुणा घृतसिक्तेन ततः क्षेत्रेशमर्चयेत् ॥ ४ ॥
पुनश्च—तस्मै सपरिवाराय बलिमेतेन निर्हरेत् ।
पूर्वमेहिद्वयं पश्चाद्विदुपि स्यात्पुरुद्वयम् ॥ ५ ॥
भंजयाद्वितयं भूयो नर्त्तयाद्वितयं पुनः ।
ततो विघ्नपदद्वंद्वं महाभैरवतत्परम् ॥ ६ ॥
क्षेत्रपाल बालिं गृह्णद्वयं पावकसुन्दरी ।
बलिमन्त्रोऽयमाख्यातो सर्वकामफलप्रदः ॥ ७ ॥
सोपदंशं बृहत्पिण्डं कृत्वा रात्रिषु साधकः ।
स्मृत्वा यथोक्तं क्षेत्रेशं तस्य हस्ते बालिं हरेत् ॥ ८ ॥
बलिनानेन सन्तुष्टः क्षेत्रपालः प्रयच्छति ।
कान्तिर्मेधा बलारोग्यतेजः पुष्टिर्यशः श्रियः ॥ ९ ॥

अलौ वेतालजो दोषः प्रलापज्वरकारकः ।
अपराजितायाः स्तवनात् गुडूचिहवनाच्छुभम् ॥ ११५ ॥

अलाविति--अलौ वृश्चिके, वेतालजो वेतालजन्यो दोषो ज्ञेयः। सः प्रलापज्वरकारको भवति। तत्र अपराजितायाः वैष्णवीदेव्याः स्तवनादाराधनात् तथा गुडूचिहवनात् त्रिमध्वाक्तगुडूचिहवनात् शुभम् भवति ।

धने यदा ग्रामभवस्य दोषः
शूलं सकासं ज्वरयुक्तदेहम् ।
प्रत्यंगिरायाश्च सुदीपदानात्
मृत्युंजयाराधनतश्च शान्तिः ॥ ११६ ॥

धन इत्यादि—धने धनलग्ने ग्रामभवः ग्रामदेवताजन्यो दोषो ज्ञेयः । तत्र सकासं कासमहितं शूलं भवति तथा ज्वरयुक्तं देहं करोति । तदा प्रत्यंगिरायाः देव्याः सुदीपदानात् तथा मृत्युंजयाराधनतः शांतिर्भवति । प्रत्यंगिरायाः विधानं मेरुतन्त्रे प्रसिद्धम् मृत्युंजयव्याजेन संजीविनीविधानम्—

नमस्कृत्वा शिवं वक्ष्ये विद्यां संजीविनीमथ ।
यया सम्प्राप्तमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ १ ॥
महास्त्रेण यदा ग्रस्तो महाव्याधिप्रपीडितः ।
अल्पादिमृत्युपाशेन सद्यो मुक्तः सुखी भवेत् ॥ २ ॥
जपेद्यदि सदाचारात् तदा मन्त्रो हि सिध्यति ।
क्ष्वेडकृत्यामृत्युदुःखात् तीर्त्वाब्धिं सुखमश्नुते ॥ ३ ॥
अहो किमाश्चर्यपरं विद्याया दृश्यतेऽधुना ।
यया सम्प्राप्तमात्रेण कचेन जीवितं कृतम् ॥ ४ ॥
भृगुकुक्षिगतं दैत्यैः पायितं चासवैर्युतम् ।
मांसं कचोद्भवं तन्तु भृगुदत्ता च विद्यया ॥ ५ ॥
कुक्षिं भित्वा भार्गवस्य सद्यस्तं जीवितं कृतः ।
अतः परं किमस्तीह आश्चर्यं मुनिपुंगव ॥ ६ ॥
त्र्यम्बकान्ते यज इति महेतत्सवितुस्तथा ।
वरेणियमथः पश्चात्सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ॥ ७ ॥
भर्गो देवस्य मन्त्रान्ते धीमहीति पदं तथा ।
उर्वारुकान्ते मिव हि वन्धनान्तं समुद्धरेत् ॥ ८ ॥
धियो यो नः प्रचोदान्ते यात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
पुनरेव महामन्त्रं जीविनीमन्त्रसंयुतम् ॥ ९ ॥
यदि कुर्यात्पुरश्चर्या तदानंतफलं लभेत् ।
वसिष्ठभृगुमार्कण्डेयविश्वामित्रकचादिकाः ॥ १० ॥

ऋषयश्चानुष्टुप्गायत्रीछंद एव च ।
अनुष्टुभेन मन्त्रेण ऋष्यादिन्यासपूर्वकम् ॥ ११ ॥
हृदयं त्रिभिराख्यातं चतुर्भिः शिर ईरितम् ।
शिखाष्टाभिः समुद्दिष्टा नवभिः कवचं तथा ॥
पंचभिर्नेत्रमाख्यातमस्त्रं त्रिभिरुदाहृतम् ॥ १२ ॥
पूर्वपश्चिमयाम्येन्द्रवक्त्रेषु तदनन्तरम् ।
उरोगलास्येषु पुनर्नाभिहृत्पृष्ठकुक्षिषु ॥ १३ ॥
लिंगपायूहस्तमूलांतर्जन्युग्मेषु तत्परम् ।
पायोर्नासिकयोः शीर्षे मन्त्रवर्णान्न्यसेत् क्रमात् ॥ १४ ॥
पदान्येकदशान्यस्येच्छिरोभ्रयुगलाक्षिषु ।
चतुर्भिर्हृदयं प्रोक्तं शिरो वेदैश्च पंचभिः ॥ १५ ॥
शिखा त्रिभिर्वर्णशरैर्नेत्रयोस्त्रितयं तथा ।
शेषैश्चास्त्रं पुनर्मूलेनैवाष्टत्वारकम् ॥ १६ ॥
व्यापकं हि नरः कुर्याद् ध्यायेद्देवमुमापातिम् ।
ध्यायेत् कल्पतरोर्मूले सुधासागरमध्यगम् ।
चिंतामणिगृहे देवं रत्नसिंहासने स्थितम् ॥ १७ ॥
शरच्चन्द्रकान्ति सुधापूर्णकुम्भैः सदा स्नापयन्तं शिवायुक्तदेहम् ।
महाभूषणाढ्यं स्मितास्यं दयार्द्रं सदार्द्रस्तनु स्तं शिवं भावयामि १८
भूभूतशुद्धिप्राणांश्च प्रतिष्ठाप्य प्रयत्नतः ।
अन्तर्वहिर्मातृकाश्च पंचकन्याससंयुतम् ॥ १९ ॥
श्रीकण्ठन्याससहितं षडंगं पीठसंयुतम् ।
यजेद्देवं हृदब्जे वै ततो वाह्यार्चनं पुनः ॥ २० ॥
जपं कृत्वा पुनर्देवं यजेदात्मनि मन्त्रवित् ।
चंद्रमण्डलमध्ये वा सुधासिक्तमुमापतिम् ॥ २१ ॥
ध्यायेज्जपेत् सदा देवं तेन सिद्धो भवेन्मनुः ।

अमृतातिलदूर्वाभिर्विधिना होमतर्पणम् ॥ २२ ॥
साङ्गं ब्राह्मणपत्न्यादियुतं संभोजयेत् ततः ।
गुर्वादीनथ अभ्यर्च्य दाक्षिणाभूपणादिभिः ।
कृतकृत्यो भवेत्सोऽपि जीवेच्च शरदां शतम् ॥ २३ ॥

मकरे ह्यतिकालोत्था बहवो दोषाश्च विज्ञेयाः ।
शूलिनीमन्त्रैर्हवनात् यन्त्रविशेषस्य धारणाच्छांतिः ॥ ११७॥

मकर इति—मकरे अतिकालोत्थाः बहुकालव्यापिनो बहवोऽनेकविधा दोषा विज्ञेयाः । तत्र शूलिनीमन्त्रैर्हवनात् (तन्त्रोक्तविधानात्) यन्त्रविशेपस्य धारणात् शांतिः स्यादिति ।

उक्तं च शारदायां—
ज्वलज्वलपदान्ते स्याच्छूलिनीतिपदं वदेत् ।
दुष्टग्रहहुमस्त्रांते वन्हिर्जायावधिर्मनुः ॥
ऋषिर्दीर्घतमा प्रोक्तः ककुप्छंद उदाहृतः ॥

आकाशभैरवकल्पे—
अनेन मनुना मर्त्यः किमसाध्यो हि भूतले ॥
कृत्याक्ष्वेडगदाभूतापस्मारः शूलशत्रवः ॥
पट्कर्मविधिना सद्यः कष्टान्मुच्येन्न संशयः ॥ १ ॥
मृतवत्सा काकवन्ध्या वन्ध्या जन्मसमुद्भवा ।
लभते तनयं दीर्घजीवितं श्रीबलान्वितम् ॥ २ ॥
चातुस्त्रिंशत्रिकोणे स्वररविहृदये शूलिनीयं द्विवारं
लक्ष्मीमायार्णपूर्वं क्षितिनिगमगृहे तारमारोदरार्णम् ।
भूयो मर्मस्वनंगं व्रणमाणिकमले पंचसन्धौ हुताशं
यन्त्रं साध्येन्दुवाहव्ये ग्रहदुरितहरं गर्भवृद्धिप्रदं च ॥ ३ ॥
त्रिसन्ध्यमभिषिच्याथ भस्मनाऽऽमंत्र्य सुस्थिरम् ।
वंधयेद्भूतशान्त्यै च गर्भवृद्ध्यै सुखाप्तये ॥ ४ ॥

कुम्भे लग्ने क्षये दोषो शतरुद्री शताक्षरा ।
सम्पुटीकरणेनैव सोमो मुक्तः क्षयामयात् ॥ ११८ ॥

कुम्भ इति—कुम्भे लग्ने प्रश्ने सति क्षयो राजयक्ष्मारूपो दोषो भवति तदा शतरुद्री प्रतिमन्त्रं शताक्षरासम्पुटीकरणेन, (शताक्षरा गायत्री जातवेदस इति त्र्यंबकमितिमन्त्रयोगेन) मन्त्रेण सम्पुटीकरणेन सोम इव चन्द्रो यथा तेनोपायेन मुक्तस्तथा क्षयामयाद् मुक्तो भवति ।

मीनेऽप्यामयजा दोषा दीर्घकालाद्धि कष्टदाः ।
शरभेश्वरवर्मजपात् नरः शान्तिं समश्नुते ॥ ११९ ॥

मीन इति—मीनलग्ने दीर्घकालाद् कष्टदाः दुष्टाः आमयजाः व्याध्युद्भवाः दोषाश्चेद् तदा शरभेश्वरवर्मजपाद् शरभकवचपाठाद् नरः शांतिं समश्नुते प्राप्नोति ।

माणिक्यं गौर्तनुत्रं वरकनकमयं रत्नवेत्रं गजेन्द्रम् ।
माहिष्यं धर्मशास्त्रं ध्वजमपि तुरगं मित्रजाद्यन्तरेषु ॥
शक्त्या देयं द्विजेभ्यो ग्रहगुणवशतो धान्यवस्त्रं सलेपं ।
पुष्पं धूपं च भक्ष्यं फलमपि गुरुतः शास्त्रतश्चाधिगम्य १२०

माणिक्यमित्यादि—मित्रजाद्यन्तरेषु सूर्यस्यानिष्टदशान्तर्दशासु गुरुतः शास्त्रतश्चाधिगम्य ज्ञात्वा ग्रहगुणवशतः ग्रहस्य सूर्यस्य गुणवशतः इष्टानिष्टभेदेन द्विजेभ्यो विप्रेभ्यो तद्दोषशान्तये माणिक्यं रत्नविशेषं गौर्धेनुः तनुत्रं कवचं तत्तु वरकनकमयं हैमं, रत्नवेत्रं रत्नजटिता यष्टिः, गजेन्द्रं करिणम्, माहिष्यं महिषम्, धर्मशास्त्रं तत्पुस्तकं, ध्वजं, तुरगं, धान्यं, वस्त्रं, सलेपं चन्दनादि-

लेपसहितं, पुष्पं, धूपं, भक्ष्यं नैवेद्यं, फलं, शक्त्या देयम् यथाशक्तितो दद्यात् ।

यथा स्कांदे—

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ।
पीड्यन्ते ग्रहपीडाभिः किं पुनर्भुवि मानवाः ॥ १ ॥
शनैश्चरेण सौदासो नरमांसे नियोजितः ।
राहुणा पीडितो राजा नलो भ्रान्तो महीतले ॥ २ ॥
अंगारकनिरोधेन रामो राष्ट्रान्निरोधितः ।
अष्टमेन शशांकेन हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ ३ ॥
रविणा सप्तमस्थेन रावणो विनिपातितः ।
गुरुणा जन्मसंस्थेन हतो राजा सुयोधनः ॥ ४ ॥
पाण्डवाः सौम्यपीडायां विकर्मणि नियोजिताः ।
षष्ठेनोशनसा युद्धे हिरण्याक्षो निपातितः ॥ ५ ॥
एते चान्ये च बहवो ग्रहदोषैस्तु पीडिताः ॥

याज्ञवल्क्यः—

ग्रहाधीना नरेंद्राणामुच्छ्रायाः पतनानि च ।
भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥
स्कांदे—यथा ग्रहो द्विजस्ताद्रिद्विधिज्ञो वेदपारगः ।
तोषयन्मृदुवस्त्राद्यैस्तुष्टमेनं विसर्जयेत् ॥ १ ॥
अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः ।
यजमानमदक्षिण्यो नास्ति ग्रहसमः कलिः ॥ २ ॥

विशेषस्तु शान्तिमयूखादौ द्रष्टव्यः ।

मुक्तावली ताम्रमयं च भाण्डं,
मत्स्यं च पाञ्चालजवस्त्रयुग्मम् ।

दासी शिशोः क्रीडनकं च कूपं
घृतं सुपद्मं हिमजादिपाके ॥ १२१ ॥

मुक्तावलीति—हिमजादिपाके चन्द्रकृतानिष्टदशान्तर्दशादौ मुक्तावली मुक्ताहारः, ताम्रमयं भाण्डं, मत्स्यं, पाञ्चालजवस्त्र-युग्मम् ऊर्णवस्त्रम्, दासी परिचारिका, कूपं कूपोत्सर्गः पद्मं कमलं च दद्यात् ।

विद्रुमशस्त्रे युद्धग्रन्थं चोष्ट्रं वृषरथभूमिनवोढाः ।
स्वर्णजमुकुटं मौक्तिमुकुरं दद्याद्भूसुतपाके नित्यम् ॥ १२२ ॥

विद्रुमेति—भूसुतपाके भूसुतस्य भौमस्य पाके दशान्तर्दशासु विद्रुमशस्त्रे विद्रुमाणि प्रवालानि, शस्त्राण्यायुधानि, युद्धग्रन्थं युद्धशास्त्रं, उष्ट्रं, वृषरथं, भूमिं, नवोढाः, स्वर्णजमुकुटं शिरोभूषणम्, मौक्तिकमुकुरं मुक्ताफलयुक्तमादर्शम्, एतानि दद्यात् ।

चमत्कारकरं नानारोगहरं तुलादानम् ।
अथ लोहं प्रदातव्यं सर्वरोगोपशान्तये ॥ १ ॥
कांस्यं च यक्ष्मणे देयं त्रपु चार्शोविकारके ।
अपस्मारे तु सीसं स्यात्ताम्रं कुष्ठे सुदारुणे ॥ २ ॥
पित्तलं रक्तपित्ते च रूप्यं प्रदरमेहयोः ।
सुवर्णं सर्वरोगेषु प्रदद्यान्मृत्युनाशनम् ॥ ३ ॥
फलोद्भवं तथा देयं ग्राहिण्या दीर्घवाहणे ।
गौडं भस्मकरोगे च पौगं स्याद्गण्डमालके ॥ ४ ॥
काष्ठजं चाग्निमान्द्ये स्याद्रोगोत्पत्तौ तु पैष्टिकम् ।
मधूद्भवं तथा देयं कासश्वासजलोदरे ॥ ५ ॥
घृतोद्भवं तथा देयं छर्दिरोगोपशान्तये ।
क्षीरं पित्तविनाशाय दधि स्याद् भगदारणे ॥ ६ ॥

लवणं वेपनाशाय पैष्टं दद्रुविनाशने ।
धान्यञ्च सर्वरोगस्य नाशनं मुनिभिः स्मृतम् ॥ ७ ॥
विशेषस्तु दानोद्योतादौ द्रष्टव्यः ॥

लाजावर्त्तं म्लेच्छग्रन्थं पादत्राणं कनकाभरणम् ।
मत्स्यं चाश्वं भूर्नववस्त्रं खड्गं राह्वादिगते देयम् ॥ १२३ ॥

लाजावर्त्तमिति—लाजावर्त्तं रत्नं, म्लेच्छग्रन्थं, पादत्राणं उपानहौ, कनकाभरणं सुवर्णालङ्कारं, मत्स्यं, अश्वं, भूः, नववस्त्रं, खड्गं असिं, एतानि राहोर्दशान्तर्दशायां दद्यात् ।

पौष्पाढ्यं हेमभूषा तुरगयुतरथः क्ष्माभृतां नीतिबन्धं ।
श्यामा कामस्य शास्त्रं द्विपरदनमयं चासनं प्रांशुकं च ॥
रत्नाढ्यासिं च शम्भ्वर्चनविधिविहितान्यासनादीनि सम्यक् ।
देयानीज्यादिपाके गुशबुशिखिशुसुचंकुराद्यन्तरादौ ॥ १२४ ॥

पौष्पाढ्येत्यादि—पौष्पं "पुखराज" इतिभाषाप्रसिद्धं रत्नं, तदाढ्यं हेमभूषणं, हेमछत्रं स्वर्णातपत्रं, तुरगयुतरथः, क्ष्माभृतां नीतिबन्धं राजनीतिग्रन्थम्, श्यामाया मञ्जुभाषिण्याः दानम्, कामस्य शास्त्रम् वात्स्यायनसूत्रादिरतिग्रन्थम्, द्विपरदनमयं आसनम् हस्तिदन्तरचितमासनम्, प्रांशुकं उत्तमवस्त्रम्, रत्नाढ्यासिं रत्नजटितखड्गम्, शम्भ्वर्चनविधिविहितान्युपयुक्तानि आसनादीनि सम्भाराणि, एतानीज्यादिपाके गुरुमहादशायां गुशबुशिखिशुसुचंकुरादिग्रहाणामंतर्दशायां क्रमेण सम्यक् यथाविधिना दद्यात् ।

नीलमणिं नवचित्रं रज्जुवरास्त्रं शुकञ्च भैषज्यम् ।
मेषं मृगमदशय्या दद्यान्मन्दादिपाकगे मन्दे ॥ १२५ ॥

नीलमणिमिति—मन्दे शनिमहादशायां मंदादिपाकगे शन्यादिग्रहान्तर्दशासु क्रमेण नीलमणिं रत्नम्, नवचित्रं नूतनालेख्यम, रज्जुवरास्त्रं रज्जुं अस्त्रं च शस्त्रं शुकं पक्षिविशेषम्, भैषज्यमौषधम, मेषं, मृगमदं मृगनाभिः, शय्यां पर्य्यङ्कम्, एतानि दद्यात् ।

मरकतमृदङ्गवीणारथहरितांशुकसुवर्णजास्त्राणि ।
द्विजाश्च गणितग्रन्थं छत्राण्यादीनि सौम्यजे पाके ॥ १ २ ६॥

मरकतेति—सौम्यजे पाके बुधमहादशायां बुधाद्यन्तर्दशासु क्रमेण मरकतं रत्नं, मृदङ्गवाद्यं, वीणां तन्तुवाद्यं, रथं, हरितांशुकम, सुवर्णजास्त्राणि हैमायुधानि, द्विजाः खचराणि गणितग्रन्थं, छत्रमातपत्रं, एतानि दद्यात ।

गोमेदं चारामं गोधूमं घृतमसूरिकाकुलथीः ।
चणकान्नं कृष्णतिला मुद्गा देया ध्वजादिजे पाके ॥ १ २ ७॥

गोमेदमिति—ध्वजादिजे पाके केतोर्दशायां केत्वाद्यन्तर्दशायां क्रमेण गोमेदं रत्नम, आराममुपवनम, गोधूमं, घृतं, मसूरिकाः, कुलथी अन्नविशेषम, चणकान्नम्, कृष्णतिलाः, मुद्गाः, एतानि दद्यात ।

वज्रं शुभ्राश्वं कपिला गौः सौवर्णं मसृणासितवस्त्रम् ।
काव्यग्रन्थमुपानच्छत्रं शुक्रादिगते देयम् ॥ १२८ ॥

वज्रमिति—शुक्रादिगते शुक्रमहादशायां शुक्राद्यन्तर्दशायां च क्रमेण वज्रं रत्नम, शुभ्राश्वम्, कपिला गौः, सुवर्णम, मसृणासितवस्त्रम् चिक्कणकृष्णवस्त्रम्, काव्यग्रन्थम्, उपानत, छत्रं, मद्यं, एतानि दद्यात ।

अथ मंगलादियोगिनीदशाज्ञानार्थमाह—

जन्मर्क्षं वन्हिना युक्तं वसुभिर्भागमाहरेत् ।
शेषांके मंगलाद्याः स्युः सूर्याद्याः स्वामिनः स्मृताः ॥
मंगला पिंगला धन्या भ्रामरी भद्रिका तथा ।
उल्का सिद्धा संकटा च एतासां नामवत्फलम् ॥

स्पष्टार्थः ॥

योगिनीदशायां भोग्यकालमन्तर्दशादिज्ञानायाह—

एकं द्वौ गुणवेदबाणरससप्तेष्टाब्दसंख्या क्रमात् ।
स्वीयस्वीयदशाविपाकसमये ज्ञेयं शुभं वाशुभम् ॥
पट्कृत्वा विभजेच्च पट्कृतिरसैकुद्वित्रिवेदेपुपद् ।
सप्ताष्टघ्नदशा भवेयुरिति ताश्चैवं दशान्तर्दशाः ॥

दशादीनां शुभाशुभादिकं फलं ग्रन्थान्तरेपु द्रष्टव्यम् ॥

इदानीं योगिनी दशा ज्ञानोपायमाह—

जन्मभं त्रिसहितं तथाष्टहृत
मंपिधभ्रमउसिद्धसं क्रमात् ।
स्वामिनश्च रगुभौबुमंशुरा
वत्सरैकपरिवृद्धिशालिनी ॥१२९॥

जन्मभमिति—जन्मभं जन्मनक्षत्रं त्रिसहितं कार्यं ततो अष्टभ्यो अधिकेङ्के अष्टहृत अष्टभक्तं कार्यं, शेषे क्रमेण मंगला, पिङ्गला, धन्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा, संकटाख्याः दशा भवन्ति। तासां क्रमेण चन्द्ररविगुरुभौमबुधमन्दशुक्रराहवः स्वामिनो ज्ञेयाः। एतासां भुक्तिवर्षमानमाह वत्सरेति योगिनी दशेति शेषः । वत्सरैक परिवृद्धिशालिनी क्रमेण एकादिवर्षवृध्या मंगलादीनां वर्षाणि भवन्तीति तात्पर्यम्। यथा आग्रिम चक्रे स्पष्टम्—

दशा	मङ्गला	पिङ्गला	धन्या	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	संकटा
वर्षाणि	१	२	३	४	५	६	७	८
स्वामिनः	चं.	सू.	गु.	मं	बु.	श.	श.	शु.

अथ दशाफलं साधारणमाह पापेति—

पापग्रहदशायां च त्रिकेशस्यान्तरं यदा ।
तयोश्च स्वामिनौ पापौ व्यत्ययेनाप्यरिष्टदौ ॥१३०॥

पापग्रहदशायां पापग्रहस्य महादशायां यदा त्रिकेशस्य षष्ठाष्टमद्वादशान्यतरभावस्य अन्तरं भवति । तयोः स्वामिनौ यदि पापौ पापग्रहौस्तस्तदा, अथ च व्यत्ययेनापि वैपरीत्येनापि यथा त्रिकेशदशायां अन्यपापस्यान्तर्दशायामपि अरिष्टदौ कष्टदायकौ भवतः ।

केन्द्रेशकोणेशदशान्तरेषु
क्षेत्रेश्वरौ पूर्णबलौ खगौ चेत् ।
सद्राज्यवामासुतभूमिकीर्ति
प्रवृद्धिदौ सौख्यकरौ नराणाम् ॥ १३१ ॥

केन्द्रेशेति—केन्द्रेशकोणेशदशान्तरेषु केन्द्रेशकोणेशयोर्दशान्तदर्शासु केन्द्रेशदशायामन्यकेन्द्रेशदशायां, केन्द्रेशदशायां कोणेशान्तर्दशायां, कोणेशदशायां केन्द्रेशान्तर्दशायां, कोणेशदशायामितरकोणेशदशायां वा क्षेत्रेश्वरौ खगौ उभौ दशान्तर्दशाधिपौ यदि पूर्णबलौ चेत्स्त स्तदा सद्राज्यवामासुतभूमिकीर्तिज्ञानादि सौख्यप्रदौ भवतः ।

लग्नाद्द्वादशभावेषु मासादिगणनाक्रमात् ।
मुंथावत्परिकल्प्यंहि फलं वर्षैकसंमितम् ॥१३२॥

शुभाशुभग्रहाणां च योगे तादृक् फलं वदेत् ।
शुभेशुभसमायोगो ह्यशु भेऽथा शुभं ध्रुवम् ॥ १३३ ॥

लग्नादिति—लग्नादारभ्य द्वादशभावेषु धनसहजादिभावेषु मासादिगणनाक्रमात् मासदिनादिगणनाक्रमेण वर्षैकसंमितं एकवर्षमितं फलं शुभाशुभात्मकं मुंथावत् परिकल्प्यं कल्पनीयम् । तत्र शुभाशुभग्रहाणां योगे दृष्टौ वा तादृक् शुभाशुभं फलं वदेत् । शुभे शुभग्रहयोगदृष्ट्यादौ शुभसमायोगः तथा अशुभे अशुभं फलं ध्रुवं निश्चयेन ज्ञेयम् ॥

तस्मिन्काले ह्यनिष्टं प्रभवति हि यदा भावतश्चाष्टमेशो ।
भावेशोवा खलाढ्यः पुनरपि खलसंलोकितोऽर्काब्दभावे ॥
वर्षेशो मासपश्चाखिलखगतः पीडितो मृत्युदः स्या ।
देवं भाग्येश्वराद्यैः शुभखचरयुतैः सत्सुखं स्यादभूरि ॥ १३४ ॥

उक्तभावदशायां विशेषमाह तस्मिन्निति—यदा यस्मिन् काले भावत इष्टभावादष्टमेशो भावेशो वा खलाढ्यः पापग्रहयुतः खल-संलोकितो वा चेत् तस्मिन् काले वर्षादौ अनिष्टं प्रभवति तथा वर्षेशो मासपश्च यदा खलखगतः पीडितौ भवतः तदा मृत्युतुल्यकष्टं भवति । एवमेव भाग्यादिभावाधिपाः शुभग्रहयुताः स्युस्तर्हि बहुसत्सुखं लभते ।

रसदशनगधृतिषोडशनवेन्दुसप्तेन्दुशैलविंशतयः ।
रचंकुराजीशबुकेभृग्वादीनां समाश्च वन्हयर्क्षात् ॥ १३५ ॥

विंशोत्तरीदशाक्रममाह रसेति—वन्हयर्क्षात् कृत्तिकानक्षत्रा-दारभ्य रचंकुराजीशबुकेभृग्वादीनां रविचन्द्रकुजराहुजीवशनिबुध केतुभृगूणां क्रमेण त्रिरावृत्त्या दशाः भवन्ति । तासां वर्षाणि

क्रमेण रसाः षट् सूर्यस्य, दश चन्द्रस्य, नगाः सप्त भौमस्य, धृतिः अष्टादश राहोः, षोडश जीवस्य, नवेन्दव एकोनविंशतयः शनैश्चरस्य, सप्तेन्दवः सप्तदश बुधस्य, शैलाः सप्त केतोः विंशतयः शुक्रस्य वर्षाणि भवन्ति । अन्तर्दशानयनादिकं ग्रन्थान्तरे ।

भयातघ्नं दशावर्षं भभोगेन हृतं यदि ।
गतवर्षमासघट्यादि लभ्यते शेषभोग्यकाः ॥
दशा दशाहता कार्या दशभिर्भागमाहरेत् ।
यल्लब्धं तद् भवेन्मासास्त्रिंशघ्ने च दिनं भवेत् ॥
शेषं षष्टिहतं कृत्वा भक्ते नाडी पलानि च ॥

प्रत्यंतरानयनम्—

स्वान्तर्दशाद्युवृन्दं च हन्यात्खाष्टै ग्रहस्य च ।
महादशासमेनाप्तं घस्राशेषकलादिकम् ॥
स्वीयदशाघटीवृन्दं हतं स्वाद्धैर्ग्रहस्य च ।
महादशासमेनाप्तं लिप्तशेषं कलादिकम् ॥

षट्बाणेर्वीकरीन्द्रा धरणिधरधराखेन्दुनन्देन्दुसूर्याः ।
क्ष्मापक्षाः शूलितोऽब्धिक्रम इह पितृतो वन्हिबाव्होश्च वेदाः ॥
मैत्रात्तिस्रो जलर्क्षाच्छ्रुतिरपि वसुतोऽग्निश्च वेदाश्च बुध्न्याद्वन्हेः ।
शुष्मारचंभौबुशगुतशुसदाष्टोत्तरीयक्रमेब्दाः ॥ १३६ ॥

अष्टोत्तरीदशायां वर्षक्रममाह षडिति—शूलित आर्द्रातश्चतुर्षु नक्षत्रेषु विभक्तानि षट् वर्षाणि रवेर्दशा भवति । ततः पितृतो मघानक्षत्रादारभ्योत्तराफाल्गुनीपर्यंतनक्षत्रत्रये बाणोर्वी पंचदश वर्षाणि चन्द्रस्य । हस्तादारभ्य विशाखान्तानि चत्वारि नक्षत्राणि तत्र करींद्रोऽष्टवर्षाणि भौमस्य । अनुराधातस्त्रीणि मूलान्तानि

धरणिधरधरा सप्तदशवर्षाणि बुधस्य । जलर्क्षात्पूर्वाषाढातश्चत्वारि श्रवणान्तानि खेन्दवो दश वर्षाणि शनैश्चरस्य । धनिष्ठातस्त्रीणि पूर्वाभाद्रपदान्तानि नन्देन्दव एकोनविंशतिवर्षाणि गुरोः । उत्तराभाद्रदादारभ्य चत्वारि भरण्यंतानि सूर्याः द्वादश वर्षाणि तमस्य राहोः । कृत्तिकातो मृगशीर्षान्तानि त्रीणि क्ष्मापक्षाश्चैकविंशतिवर्षाणि शुक्रस्य सदाष्टोत्तरीये ज्ञेयानि ।

सौम्यैर्विद्धे चिरायुः स्याद्धनधान्यादिवृद्धिभाक् ।
पुनर्वेधे महावृद्धिः सर्वतोभद्रचक्रके ॥ १३७ ॥

सौम्यैरिति--जन्मनि सौम्यैः शुभग्रहैर्विद्धे चिरायुः दीर्घायुर्धनधान्यादिवृद्धिभाक् भवति । पुनः वर्षप्रवेशे प्रश्नादौ वा सर्वतोभद्रचक्रके तथाविधे शुभैर्वेधे महावृद्धिरैश्वर्यस्येति ।

लग्नेशश्चाष्टमेशौ द्वौ विद्धौ पापग्रहेण च ।
गोचरे व्याधिदौ तस्य भानां पादक्रमेण च ॥ १३८ ॥

लग्नेश इति—लग्नेशो लग्नस्वामी, अष्टमेशश्च, उभावपि पापग्रहेण विद्धौ यदि गोचरे भवतस्तदा भानां पादक्रमेण व्याधिदाविति ।

षष्ठेशः शत्रुणा विद्धो रोगेण रहितो नरः ।
व्ययेशश्च शुभैर्विद्धो लाभयुक्तश्च सद्व्ययः ॥ १३९ ॥

षष्ठेश इति—शष्ठेशः शत्रुणा स्वशत्रुणा विद्धो भवति तदा रोगेण रहितो नरो वाच्यः । एवं व्ययेशश्च शुभग्रहेण विद्धो भवति तदा लाभयुक्तस्सद्व्ययश्च भवति ।

लग्नपुत्रमदाधीशाः कर्मायस्वसुखाधिपाः ।
शुभैर्विद्धा राज्यदाः स्युः स्वस्वस्थानस्य सौख्यदाः ॥ १४० ॥

लग्न इति—लग्नपुत्रमदायीशाः कर्मायस्वसुखाधिपाश्च शुभैः शोभनैर्ग्रहैर्विद्धाः सन्तो राज्यदाः स्वस्वस्थानस्य तत्तद्भावजन्यविशेषस्य सौख्यदा भवन्ति ।

येषां वर्णस्वराद्यं जनुषि खलखगैर्विद्धमेकेन चिन्ता ।
द्वाभ्यां रोगी नितान्तं तदधिकवशतश्चायुषोहानि रुक्ता ॥
वर्षादीनां प्रवेशे पुनरपि हि यदा जायते वेधवेला ।
तस्मिन्काले ध्रुवं स्यात् फलमिह कथितं सर्वतोभद्रचक्रे १४१

अथ सर्वतोभद्रचक्रदर्शनप्रकारमाह । येषां नृणां वर्णस्वरादयः यन्नक्षत्रपादस्य यन्नामाक्षरमस्ति (जन्मचक्रावलोकने जन्मनक्षत्रोत्थपादजातनामग्रहणमन्यत्र व्यवहारेषु नामभम्) तस्य ये स्वरवर्णनक्षत्र-राशि-तिथयस्तेषु चैकस्मिन् पापग्रहेण विद्धे चिन्ता स्यात् द्वाभ्यां विद्धे रोगः त्रिभ्योऽधिकपापविद्धे क्रमेण दीर्घं मध्यं मध्ये चाल्पमल्पेऽरिष्टमात्रमित्यादिपरिपाट्या आयुषां हानिर्भवति । तत्र यद्भावेशो विद्धस्तद्भावजन्याचिन्ता भवति । शुभाविद्धे वृद्धिर्भवति । वर्षमासदिनप्रवेशकाले तात्कालिकक्षणिकचंद्रं प्रकल्प्य तस्माद्ये भावाः पापविद्धाः शुभविद्धा वा भवन्ति तस्मिन्काले तदैवोक्तं फलं ध्रुवं भवति । पंचविद्धे तद्भावस्य पूर्णरूपेण हानिर्वाच्या उक्तं च—

यस्मिनृक्षे भवेज्जन्म यो वर्णस्तत्र यः स्वरः ।
या तिथिस्तत्र यो राशिर्विज्ञेयं जन्मकालतः ॥ १ ॥

वन्हिस्थखेचरो याम्यमकारं वृषराशिनम् ।
नन्दाभद्रातिथिं तौलिं तं विशाखां श्रुतिं हरेत् ॥ २ ॥

यदि तारा ग्रहो वक्र एक एव यमं हरेत् ।
शीघ्रगश्चेदकारोर्क्षं नन्दाभद्रासवारकम् ॥ ३ ॥

तुलातकारनन्दाग्निं दैवतं च भिनन्ति च ।
मध्यगत्या समानश्च वैष्णवर्क्षं भिनंति च ॥ ४ ॥
रोहिणीसंस्थितः खेटो वं युग्ममौ स्त्रियं हरेत् ।
रं स्वातिमुस्वरं दास्रमभिजिद्दक्षमाहरेत् ॥ ५ ॥
सौम्यसंस्थो हन्ति खेटः ककारं कर्कटं हरिम् ।
पं त्वाष्ट्रभमस्वरं लं पौष्णर्क्षं वैश्वभं पुरः ॥ ६ ॥
आर्द्रासंस्थः खगो हन्याद्धं लृकारं टमर्कभम् ।
त्वमक्षरलृचकारमुत्तराभाद्रमंबुभम् ॥ ७ ॥
आदित्यसंस्थितः खेटो डकारमाक्षरार्यमम् ।
कं वृषाजौ दकारं च पूर्वाभाद्रं च नैर्ऋतम् ॥ ८ ॥
पुष्यस्थः खेट ऊकारं भगर्क्षं हंयुगं हरेत् ।
ओकारं मीनराशिं च सं कपं ज्येष्ठभं तथा ॥ ९ ॥
आश्लेषासंस्थितः खेटो मघां डं कर्कटं क्रमात् ।
नन्दां रिक्तां हरेत्कुंभं गकारं वसुमित्रभे ॥ १० ॥
मघाऋक्षस्थितः खेटो मकारं केसरिं हरेत् ।
भद्रां जयां तिथिं नर्क्षं खं विष्णुं सार्पभं यमम् ॥ ११ ॥
पूर्वाफाल्गुनिगः खेटष्टं कन्यामस्वरं धनुः ।
जकारमाभिजिद्धन्यादृस्वरं पुष्यदास्रभे ॥ १२ ॥
उत्तरर्क्षे गतः खेटः पकारं तौलिवृश्चिकौ ।
भं वैश्वर्क्षं मं डकारमदितिं रेवतीं हरेत् ॥ १३ ॥
हस्तर्क्षगः खगो रं च एस्वरं याक्षरं हरेत् ।
अम्बुभं टं लृस्वरं च हं शिवमुत्तरभाद्रभम् ॥ १४ ॥
चित्रर्क्षगः खेचरस्तं नकारं नैर्ऋतिं हरेत् ।
पं केसरीकुलीरौ कं चन्द्रर्क्षं पूर्वभाद्रभम् ॥ १५ ॥
स्वात्यर्क्षगः खगो हन्ति ऋस्वरं ज्येष्ठभं क्रमात् ।

रं कन्यामौस्वरं युग्मं थं विधिं शततारकम् ॥ १६ ॥
विशाखास्थः खगो हन्यान्मित्रभं तं तुलां क्रमात् ।
भद्रां नन्दां वृषं चैव अस्वरं वन्हिभं तथा ॥ १७ ॥
अनुराधास्थितः खेटो विशाखां नमालिं जयाम् ।
रिक्तां तिथिं क्रियं हन्याल्लकारं याम्यसार्पभे ॥ १८ ॥
ज्येष्ठर्क्षगः खगो हन्ति यकारं चापमस्वरम् ।
मीनं चकारं तुरगमस्वरं स्वातिपुष्यभे ॥ १९ ॥
मूलस्थखेचरो हन्याद्धं नक्रं कुम्भराशिकम् ।
दकारं रेवतीं नं तं चित्रामादित्यमग्रगाम् ॥ २० ॥
तोयर्क्षगो हन्ति खेटो जमैकारं सकारकम् ।
अहिर्बुध्न्यं यमेस्वरं च रकारं हस्तमार्द्रभम् ॥ २१ ॥
वैश्वर्क्षगः खेचरः खं गकारं पूर्वभाद्रभम् ।
भकारमालिजूकं पमुत्तरां शशिभं हरेत् ॥ २२ ॥
अभिजित्स्थः खगो हन्ति ऋकारं शततारकम् ।
जं चापमस्वरं कन्यां टकारं भाग्यधातृभे ॥ २३ ॥
गोविन्दगः खं मकरं जयां भद्रां तिथिं ग्रहः ।
सिंहं मकारं पैत्र्यर्क्षं धनिष्ठां हन्ति कृत्तिकाम् ॥ २४ ॥
वस्वृक्षगः खगो हन्ति गकारं कुम्भराशिकम् ।
रिक्तां नन्दां कुलीरं ढं सार्पं विष्णुद्विदैवतम् ॥ २५ ॥
शततारर्क्षगः खेटः सं मीनमोस्वरं युगम् ।
हं पुष्यं हन्ति ऋकारमभिजित्स्वातिमग्रगाम् ॥ २६ ॥
पूर्वाभाद्रस्थितः खेटो दं मेषं वृषभं हरेत् ।
कमादित्यं गकारं खमुत्तराषाढत्वाष्ट्रभे ॥ २७ ॥
उत्तराभाद्रगः खेटश्चं लं वमार्द्रभं तथा ।
सकारमैस्वरं हन्ति जं तोयर्क्षं रविं तथा ॥ २८ ॥

रेवतीसंस्थितः खेटो दं कुम्भं नक्रराशिकम् ।
भं नैर्ऋतिं लकारमं चंद्रर्क्षमुत्तरां हरेत् ॥ २९ ॥
अश्विनीसंस्थितः खेटश्चं मीनमःस्वरं धनुः ।
यक्षरं चेन्द्रभं हन्ति उकारं विधिभं भगम् ॥ ३० ॥
भरणीसंस्थितः खेटो लकारं मेषराशिकम् ।
रिक्तां जयामालिं हन्यान्नं मित्रमग्निपित्र्यभे ॥ ३१ ॥
पुनश्च—
भुक्तं भोग्यं तथा क्रान्तं विद्धं क्रूरग्रहेण भम् ।
शुभाऽशुभेषु कार्येषु वर्जनीयं प्रयत्नतः ॥ १ ॥
ऋक्षाणि क्रूरविद्धानि क्रूरभुक्तादिकानि च ।
भुक्त्वा चंद्रेण मुक्तानि शुभार्हाणि प्रचक्षते ॥ २ ॥
मासपक्षदिनक्षणिकादिग्रहकल्पना ग्रन्थान्तरेषु द्रष्टव्या ।
पंचाणेङस्वराः कछडधभवमुखेष्वङ्णञ्यञ्जनेषु ।
स्युर्नन्दादेस्तिथेस्तेतिथिकपिलवतोऽप्यन्तरा भोगभाजः ॥
नाम्नो बालः कुमारो युवसजरमृतास्त्वादिवर्णात्स्वरास्ते ।
सिद्ध्युत्कर्षौ युवान्तोऽपचयइतरयो युद्धयतां द्रिण्मृताचि ॥

वर्णे विद्धे द्रव्यहानिः क्लेशामयकरस्सदा ।
ऋक्षे भ्रमः स्वरेऽनिष्टं राशौ विघ्नं तिथौ भयम् ॥१४२॥

कस्मिन् विद्धे किं फलमित्याह वर्ण इति—वर्णे पापविद्धे द्रव्यहानिः क्लेशामयश्च भवति । ऋक्षे विद्धे भ्रमः, स्वरे विद्धे अनिष्टं, राशौ विघ्नं, तिथौ भयम्, एषु पंचस्वेव विद्धेषु पापग्रहपंचकेन तदा मृत्युरिति ॥

विद्युज्जिव्हं शरर्क्षं ध्वजमपि धृतिभं हस्तिसंज्ञं हि शूलम् ।
कम्पोल्कावज्रनिर्घोकरकरप्रकृतिन्याक्षिवेदाक्षिधिष्ण्याः ॥

शक्राख्यं सन्निपातं दिनकरभमुखात्सप्त चोपग्रहेन्द्राः ।
क्रूरैर्युक्ता यदा स्यु र्निधनमिहवदेत्कारकेशोऽपि विद्धे १४३

अन्यदप्याह विद्युज्जिव्हमिति—सूर्याक्रान्तनक्षत्रात् शरर्क्षं पंचमं विद्युज्जिह्वम्, धृतिभं अष्टादशं ध्वजम् हस्तिसंज्ञं, अष्टमं शूलम्, करकरं द्वाविंशं कम्पाख्यं, प्रकृति एकविंशम् उल्काभिधम्, त्र्यक्षि त्रयोविंशम् वज्रम्, वेदाक्षि चतुर्विंशम् निर्घातसंज्ञम्, शक्राख्यं चतुर्दशम् सन्निपातसंज्ञं भवति । यदैते क्रूरग्रहयुतास्सन्तः कारकेशं भावेशं वा वेधयन्ति तदा कष्टविशेषं जनयंति । अत्रोक्ता विद्युज्जिव्हादयो जन्मचक्रे केषांचिन्मते प्रतिवर्षं चलन्ति । विशेषोऽन्यत्र यथा—

जन्मभं कर्ममाधानं विनाशं सामुदायिकम् ।
सांघातिकमिदं धिष्ण्यषट्कं सर्वजनीयकम् ॥ १ ॥
ज्ञातिदेशाभिषेकैश्च नवधिष्ण्यानि भूपतेः ।
वेधं ज्ञात्वा फलं ब्रूयात्सौम्यैः क्रूरैः शुभाशुभम् ॥ २ ॥

जन्मभं जन्मनक्षत्रं दशमं कर्मसंज्ञकम् ।
एकोनविंशमाधानं त्रयोविंशं विनाशनम् ॥ ३ ॥
अष्टादशं च नक्षत्रं सामुदायिकसंज्ञकम् ।
सांघातिकं च विज्ञेयमृक्षं षोडशसंज्ञकम् ॥ ४ ॥
षट्त्रिभं राज्यभं प्रोक्तं जातिनाम स्वजातिभम् ।
देशभं देशनामर्क्षं राज्यर्क्षमभिषेकभम् ॥ ५ ॥
मृत्युः स्याज्जन्मभे विद्धे कर्मभे क्लेश एव च ।
आधानर्क्षे प्रवासः स्याद्विनाशे बन्धुविग्रहः ॥ ६ ॥

सामुदायिकभेऽनिष्टं हानिः सांघातिके तथा ।
जातिभे कुलनाशः स्याद् बंधनं चाभिषेकभे ॥
देशर्क्षे देशभंगं च क्रूरैरेवं शुभैः शुभम् ॥ ७ ॥

अथ रत्नायुर्दायं वक्ष्ये लोकोपकाराय ।
सुलभं विंशोत्तर्या ह्यष्टोत्तर्या सुसंप्राप्तम् ॥ १४४ ॥

अथेति, लोकोपकाराय, विंशोत्तरीदशासु, अष्टोत्तरीदशासु च, गुरुप्रसादात् प्राप्तं रत्नायुर्दायं वक्ष्ये, यथा अंशायुः पिंडायुर्निसर्गायुस्तथायमपि, लग्नेशादिग्रहाः भावाश्च देहिनां पोषका, हानिकराश्च । त्रिकेशाधिपास्त्रिकभावाश्च निर्बलाः पोषकाः सबला हानिकरा भवन्ति । विंशोत्तरीमते प्रतिग्रहभावानां दश दश वर्षाणि, अष्टोत्तरीमते नव नव । तेषां स्थानदृष्टि वशात् बलाबलं ज्ञात्वा त्रैराशिकाद् भुक्ताभुक्तदशायुर्दायानयनं वक्ष्यति ।

स्पष्टान् खगान् द्वादश भावयुक्तान्
कृत्वा हि पूर्वं परिपूर्णराशौ ॥
खचन्द्र वर्षाणि यदा भवन्ति
स्त्रेष्टे खगे किंत्वनयैव युक्त्या ॥ १४५ ॥

आप्तञ्च भुक्तं दशवर्षमध्ये
शोध्यं बुधैस्तत् किल मध्यमायुः ॥
पापैः शुभैर्दृष्टिवशाच्च शोध्यं
योज्यं तदा स्पष्टखगायुरित्थम् ॥ १४६ ॥

स्पष्टानिति, आप्तमिति च । पूर्वं द्वादशभावयुक्तान् स्पष्टान् खगान् कृत्वा परिपूर्णराशौ खचन्द्र १० वर्षाणि यदा भवन्ति तदा स्वेष्टे खगे किम्, त्रिंशदंशैर्दशवर्षाणि यदा प्राप्यन्ते, तदा स्वेष्टे जन्मकालीनग्रहे किं ? तु पुनः, अनयैव युक्त्या त्रैराशिकाद् गणितात् वर्षमासादिकं यदाप्तं भवेत् तद्भुक्तात्मकं दशवर्षमध्ये

शोध्यं तत्र किलेति निश्चयेन मध्यमायुः स्यात्, बुधैर्ग्रहाणां पाप-शुभदृष्टिवशाच्च शोध्यं, योज्यं वा तदेत्थं स्पष्टं खगायुः स्यादिति ।

पाददृष्टौ स्वाष्टमांशमिति युक्त्या च साधयेत् ।
दृष्टिश्चतुर्विधा तद्वदायु साध्यं प्रयत्नतः ॥ १४७ ॥

पादेति, पाददृष्टौ चतुर्थांशदृष्टौ स्वाष्टमांशं यल्लब्धं वर्षादिकं तत्र पापग्रहदृष्टिवशात् शोध्यम् शुभदृष्टिवशात् योज्यं । अनया युक्त्या इदमायुः प्रयत्नतः साध्यम् । इत्थं दृष्टिश्चतुष्टयवशात् पाददृष्टौ $\frac{1}{८}$ अर्धदृष्टौ $\frac{2}{८}$ त्रिपाददृष्टौ $\frac{3}{८}$ चतुष्पाददृष्टौ $\frac{४}{८}$ मितवर्षादीनां हानिर्वृद्धिर्वा कार्या ।

बलहीनो हि लग्नेशः सर्वमायुर्व्यपोहति ।
भावायुरेवं संग्राह्यं त्रिकेशान्तं हि जीवनम् ॥ १४८ ॥

बलहीन इति, लग्नेशो बलहीनश्चेत् तदा स्वस्य सर्वं, आयुर्व्यपोहति नाशयति । अत्र तुंगनीचादिबलाबलवशात् अर्धार्धादिभागमपहरति । एवं अन्यभावायुः संग्राह्यं । त्रिकेशान्तं हि जीवनं, यथा षष्ठेशादष्टमेशो बली चेदष्टमेशाद् द्वादेशशो बली चेत्तदा व्ययेशदशान्तं हि जीवनं भवति । एवं षष्ठेशो बली चेत्तदा षष्ठेशान्तं अष्टमेशे सबले अष्टमेशान्तं चेति ।

हीनास्त्रिकेशाः शुभदा बलिनश्चान्यभावपाः ।
यो हीनस्तद्दशायुः स्यात् स्थानास्थितखगोद्भवम् ॥ १४९॥

हीना इति । त्रिकेशा हीनबलाश्चेत् शुभदा भवन्ति । अन्यभावपा बलिनः शुभदाः । एषां मध्ये यो हीनः हीनबलस्तद्दशान्तमायुः स्यात् । क्रमेण स्थानस्थितिवशात् लग्नेशात् यः कोऽपिभावेशः अग्रे स्थितः तस्य प्रथमं फलम् तस्माद् द्वितीयस्य एवं

तृतीयस्य तथान्येषाम् । एकभावे बहवः पतिताश्चेत् तेषां मध्ये विलिप्तिकाभिर्यो हीनस्तस्य प्रथमं तदग्रस्थस्य द्वितीयं, एवं सर्वेषामपीति ज्ञेयम् ।

लग्नात् स्थानगताः सर्वे ह्यन्तर्दायोत्थजं क्रमात् ।
प्रोच्यं सुधीभिः श्रेष्ठं वा ह्यनिष्टं भावजं फलम् ॥ १५० ॥

लग्नादिति । लग्नात् जन्मलग्नात् पूर्वोक्तक्रमेण सर्वे ग्रहा यथा स्थितास्तथा तथा हीति निश्चयेन क्रमादन्तर्दशासाधनीया । ततः फलं श्रेष्ठं ह्यनिष्टं वा भावजं सुधीभिः प्रोच्यम् ।

राहुकेतू सदा भोग्यान् वत्सरान् संप्रयच्छतः ।
शुभदृष्टिवशात् योज्यौ हीनौ कार्यौ न पापतः ॥ १५१ ॥

राहुकेत्विति । राहुः केतुः चोभौ सदा वक्रगतित्वाद् भोग्यान् वत्सरान् प्रयच्छतः, एतौ शुभदृष्टिवशात् योज्यौ किन्तु पापदृष्टिवशात् हीनौ न कार्यौ तयोराधिक्यस्य पापिन अभावात् । पापादपि हि पापिना वित्युक्तेः । अनेन ये चान्ये वक्रीभूताग्रहास्ते भुक्तवर्षादिकं प्रयच्छन्तीति ज्ञेयम् ।

यस्मिन् भावे गतौ तौ चेत्तद्भावपतिना पुनः ।
संयोज्य वर्षादिफलं ब्रूयात् सर्वं शुभाशुभम् ॥ १५२ ॥

यस्मिन्निति । यस्मिन् भावे तौ राहुकेतू स्यातां तद्भावेश्वरेण यदाप्तं वर्षादिकं, शुभदृष्टिवशाच्च यदाप्तं तत् सर्वमेकीकृत्य राहुकेतुजन्यं शुभाशुभफलं ब्रूयादिति ॥

षष्ठाष्टमद्वादशभावपेशाश्चान्योन्य भावात् परिचिन्तनीयाः ॥
लग्नेशमित्राद्यतिशत्रवस्ते नीचोच्चभेदादशुभं शुभञ्च १५३

षष्ठाष्टेति । इष्टभावाद् भावेशाद्वा अन्योन्यं परस्परं षष्ठाष्टमद्वादशभावपेशा लग्नेशस्य मित्राणि तदा न हानिकरास्ते यद्यतिशत्रवस्तदा नीचोच्चभेदादशुभंशुभश्च फलं प्रयच्छन्तीति शेषः ।

अरिष्टे संप्राप्ते शशितनुभतस्तत्र हि खगः
स्वनीचस्थश्चास्तः क्षुतनयनदृष्टः खलखगात् ।
तदा पादं पादं हरति सकलायुः क्रमवशात्
नचेल्लग्नाधीशःशुभयुजिगतश्चित्रमिह किम् ॥ १५४ ॥

अरिष्ट इति । शशितनुभतः शशिनो जन्मराशेः तनुभतो जन्मलग्नाद्वा अरिष्टे संप्राप्ते सति तत्र तदा यदि खगः राश्यधीशो लग्नाधीशो वा, स्वनीचस्थः अस्तो वा खलखगेन पापग्रहेण क्षुतनयनदृष्टः ताजिकोक्तक्षुतदृष्टिदृष्टो वा चेत्, किंतु स यदि शुभयुजिगतः शुभग्रहेण सह योगयुतो न चेत् तर्हि क्रमेण सकलायुषः पादादिदृष्टिभेदेन पादं पादं हरति इहास्मिन् विषये किं चित्रम् ? इति पूर्वोक्तानुवादः । जातके क्षुतदृष्टिस्तु नवमपंचमां विहायान्यत्र पापानां, शुभानांतु शुभैव सर्वत्र ।

कृष्णे रात्रौ दिवा शुक्ले ह्यष्टोत्तरशतात्मकम् ।
विपरीते तु संसाध्यमायुर्विंशोत्तरात्मकम् ॥ १५५ ॥

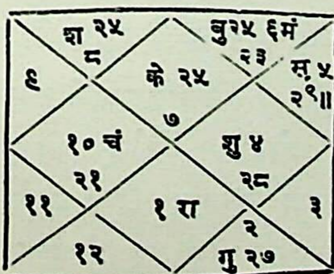
अत्र द्वयोः प्राप्तयोः कदा का दशा ग्राह्येत्याह—कृष्ण इति । कृष्णे कृष्णपक्षे रात्रौ यदा लग्नं तथा शुक्ले शुक्लपक्षे यदि दिवा लग्नं तदाष्टोत्तरीदशा ग्राह्या विपरीते तु कृष्णे दिवा, शुक्ले रात्रौ वा लग्ने विंशोत्तरीदशात्मकं पूर्वोक्तमायुः साध्यम् ।

अत्रोदाहरणम् वै० सं० १९८६ भाद्रशुक्लत्रयोदश्यां चन्द्रे इष्टघटीषु ८।३० दीक्षितोपाह्व कन्हैयालालशर्मणो गृहे गिरिराजनाम्नः

सुतस्योत्पत्तिः लग्नं ६।१६।३७ लग्नेशो भृगुः ३।२८।४९।२९ विशवपञ्चांगस्थः । अस्य रत्नायुर्दायं प्रदर्श्यते अष्टोत्तरीविधिना त्रिंशदंशैर्नव वर्षाणि लभ्यन्ते तदा स्वेष्टांशे २८।४९ किमिति भुक्त-वर्षाणि ८।७।१९।२१ नवमध्ये शोधितानि ०।४।१०।३९ भोग्य-वर्षाणि अत्र शनिचन्द्रगुरवो भृगुं पश्यन्ति शनिस्त्वर्धदृष्ट्या पश्यति तेन द्विगुणिताष्टमांशस्य १६।१९।९ दिनादेः हानिः कार्या । एवं चन्द्रस्यापि चतुर्गुणितानि दिनानि योज्यानि २।९।०।२० गुरो-रष्टमांशमात्रं योज्यं तेन जातमायुः ९।२९।२३।१९ एतानि मासा-दीनि सावनानि सौरसंस्कारात् स्पष्टानि । अतः तस्य बालकस्य फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां बुधे कर्कलग्ने शिवलोकप्राप्तिर्जाता ।

एतदायुर्मध्ये यदल्पान्तरं जातं तत् ग्रहगणितदोषात्मकं । इदानीं अन्तर्दशोदाहरणं यथा—लग्नेशस्य महादशा ९।२९।२३।१९ मासादीनि तानि नवभक्तानि लब्धिः २० दिनानि । यथाक्रम-पतितलग्नेशादिग्रहाणां लग्नेशस्य महादशामध्ये विंशति विंशति दिनात्मकमन्तराभोगं जातम् । प्राणोत्क्रमणसमये तस्य षष्ठेशस्य शनिदृष्टस्य छिद्रस्थस्य गुरोरन्तरं प्राप्तमासीत् ।

लग्नकुण्डलीचक्रम् ।



लग्नेशमहादशाचक्रम् ।

ग्र.	शु.	सू.	मं.	बु.	के.	श.	चं.	रा.	गु.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दि.	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०

लग्नेशः छिद्रगश्च भृगुस्तदधिपश्चन्द्रः शनिना दृष्टस्तेन बालारिष्टं प्राप्तम् । अथास्य भात्रायुः साध्यते लग्नं ६।१६।३७।१६ सूक्ष्मान्तरत्वात् नवाब्दविधिना ५ वर्षाणि लब्धानि भुक्तानि, शेषाणि ४ वर्षाणि द्वादशभक्तानि लब्धाः ४ मासाः एतत् लग्नाद् भावान्तरं जातं लग्नदशामध्ये द्वितीयस्यान्तरेऽरिष्टं प्राप्तं तद्भावेशो भौमो व्ययस्थो बुधक्षेत्रे तेनैव युतो नीचांशगो जीवदृष्टश्च सूर्यकेत्वोर्मध्यस्थश्च, तदंशेशश्चन्द्रः शनिदृष्टो, बुधांशेशो रविः शनिदृष्टः तनूमध्ये सूक्ष्मान्तरादिनादीनि १३।२० प्रथमा वृश्चिकदशा, द्वितीया धनस्य, तृतीया मकरस्य, चतुर्थी कुंभस्य, कुंभराशेः षष्ठस्थः शुक्रः सप्तमस्थो रविः शनिदृष्टः, छिद्रे भौमबुधौ, द्वितीयेशो गुरुः शनिदृष्टो, द्वादशे कन्यांशस्थश्चन्द्रः शनिदृष्टस्तेनापि तदारिष्टयोगः प्राप्तः ॥

मिश्राख्यकालोद्भवजन्मसूर्यौ
शोध्यौ मिथः स्वप्रविलिप्तिकाभिः ॥
ऋणं धनं तत् फलमाप्तकालात्
साध्यं सुलग्नं दिवसप्रवेशे ॥१५६॥

अथ मिश्राख्येति ॥ मिश्राख्यकालोद्भवजन्मसूर्यौ प्रविलिप्तिकाभिर्मिथः परस्परं शोध्यौ, अर्थात् मिश्राख्यकालोद्भवसूर्याद् जन्मरविर्न्यूनश्चेत् तदा तस्मात् हीनः कार्यः यदाप्तं फलं तन्मिश्रकालीनघटिकाभिर्हीनं कार्यं तत् दिवसप्रवेशे सूर्योदयादिष्टं

स्यात् । यदि जन्मरविर्मिश्रकालीनसूर्यादधिकश्चेत्तर्हि तनूमध्ये मिश्रकालोद्भवभानुं हीनं कृत्वा यदाप्तं फलं तत् मिश्रकाले धनं कार्यम् । तेन कालेन द्युप्रवेशे लग्नं साध्यम् । प्रतिदिनं रविरेकमंशं चलति तेनलिप्तिकास्वेवानुपातः । सूक्ष्ममिश्रकालानयने पङ्क्तिस्थमिश्र कालद्वयेऽप्यनुपातः कार्यः । अत्रोदाहरणम्—जन्मरविः १।११।४। ३६ सं० १९९० मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां गुरौ मिश्रकालीनरविः ७।१८।५९।५३ अनयोर्लिप्तिकास्वन्तरं ५९।१७ मिश्रकालीनघटिकाभिः ४५।५० हीनं जातं घटिकाद्यं १०।२७ रव्युदयात् पूर्वमेव दिवसप्रवेशः, इदं फलं षष्टिघटिकाभिर्न्यूनं कृतं ४९।३३।७।१९। अंशादिना सारणीतो लग्नं साध्यम् एवं वर्षमासप्रवेशेऽपि साध्यम् ।

भावभावाधिपौ चांशपौ चेद्यदा
मित्रदृष्टौ तदा भं सदा पश्यतः ।
विधत्तो हि लग्नेशतश्चेत्थशालं
तद्दिनं सौख्यदं दुःखदं वा खलैः ॥१५७॥

भावेति । भावभावाधिपौ लग्नादिभावास्तदीशाश्च । अंशपौ तयोर्भावभावेशयोरंशाधीशौ यदा मित्रदृष्टी लग्नेशेन सहेत्थशालं कुरुतस्तद्दिनं नृणां सौख्यदं तद्भावजन्यसुखदं भवति । तौ यदि शत्रुशापदृष्टौ वा स्तः खलैरित्थशालं वा कुरुतस्तद्दिनं दुःखदं भवति । एषु पंचसु यो यावान् बलवान् तादृक् सुखं भवति । यथा लग्नेशः सर्वथा बलहीनः भावस्तु पूर्णबलश्चेत् तदा तद्भावलभ्यपदार्थस्य पूर्णत्वं स्यात् किन्तु तद्भोक्ता न स्यात् । यथा भोजनप्रश्ने अन्नं सिद्धं लभेत किन्तु क्षुधाभावः स्यात् । विपरीते तु वैपरीत्यं ज्ञेयम् । द्वयोर्बलवतोरपि इत्थशालासंभवे न प्राप्तिसंभवः । जन्मवर्षदिवसमासकालेषु यथापूर्वं बलीयान् ।

तनोः स्वायाङ्कपास्तत्पास्तथांशेशाः शुभेक्षिताः ।
लग्नेशयोगिनश्चेत्स्युस्तदा लाभप्रदाः सदा ॥१५८॥
दिनेश्वराद्दिवालाभो रात्र्यधीशात्तथा निशि ।
धनसंख्या तदा ज्ञेया खेश्वरस्य बलाबलैः ॥१५९॥

तनोरिति । तनोर्लग्नात् स्वायाङ्कपाः धनलाभभाग्येश्वराः, तत्पाः ते धनायभाग्येशा यस्मिन् राशौ स्थितास्तत्स्वामिनः तथा अंशेशाः तेषां नवमांशस्वामिनश्च यदा शुभेक्षिता भवंति तथा च ते यदि लग्नेशयोगिनः लग्नेशेन सहेत्थशालिनो यदा भवन्ति तदा लाभप्रदाः भवंति । तत्र दिनेश्वरे बलवति दिने, रात्र्यधीशे तु रात्रौ लाभो ज्ञेयः । तत्र धनसंख्या प्राप्तव्यद्रव्यपरिमाणं तु खेश्वरस्य दशमेश्वरस्य बलाबलैः कल्पनीया । अत्रोदाहरणम्—दिवसप्रवेशे लग्नं धनं धनभावेश्वरो मन्दः वृषांशे, लाभेश्वरोऽपि तत्रैव । लग्नेश्वरं गुरुं धनेशो मन्दो दशमदृष्ट्या पश्यति, धनेशः शुक्रांशे गतस्तद्दिने शतद्वयरूप्यकमितं धनं लब्धम् । भाग्यराज्यपौ लग्नगतौ तदधिपो गुरुस्तदधिपः शुक्रः तन्नवमांशे धनेशो दशमस्थितचन्द्रेण सह सम्बन्धी अतो रात्रौ पूर्वोक्तं धनं प्राप्तम् । पञ्चमेशभौम संबन्धात् राजमन्त्रिसकाशात् लब्धमिति विशेषः ।

दिनक्ष्मापयोर्भावनन्देश्वरौ केन्द्रकोणोपगौ मित्रदृष्टौ शुभौ ॥
तनुंतत्पतिर्वीक्षते तद्दिने भावजान्नं रसाढ्यं नरश्चाश्नुते १६०

दिनक्ष्मापयोरिति ॥ दिनक्ष्मापयोः सूर्याचन्द्रमसोर्भावनन्देश्वरौ तदधिपौ नवमांशाधिपौ च केन्द्रकोणोपगौ मित्रदृष्टौ शुभौ चेत् स्तः, तथा लग्नेश्वरो लग्नं पश्यति तद्दिने नरः भावजान्नं भावाः भ्रातृमित्रनृपादयस्तेषां सम्बन्धात् लब्धमन्नं रसाढ्यं तत्तद्ग्रहसम्बन्धिरसयुक्तं नरो अश्नुते । अत्राश्नातीति भोजनार्थोऽ

शुधातुर्ज्ञेयः । तेषां ग्रहाणां बलाबलयोगेन भोज्यस्य रसस्य न्यूनाधिकत्वमपि ज्ञेयम् । तत्र गुरुचन्द्रदृष्टिवशाद् घृततैलपक्वत्वं भौम चन्द्रदृष्टिवशात् शीतोष्णत्वं मित्रामित्रदृष्टिवशात् प्रियत्वमप्रियत्वञ्च ज्ञेयम् । लग्नेश्वरादीनां अवस्थावशात् हास्यविनोदादियुक्तत्वं कोणेशयोः सम्बन्धात् परिवेष्टृत्वं भोक्तृत्वञ्च ज्ञेयम् । एतेषां सम्बन्धाभावे तु षड्वर्गवशात् फलं ज्ञेयम् ॥ तथा चोक्तं—"लग्नेशो भोज्यदाता च सुखेशो भोज्यमीरितं । बुभुक्षा मदपः कर्मपतिर्भोक्तेतिचिन्तयेत् ॥ १ ॥ रसावलोकनं तु—" कटुकलवणतिक्तमिश्रिता मधुराम्लौ च कषाय इत्यपि" चतुर्थेशराशिवशाच्च भोज्यानां जलचरभूचरखेचरादिजीवानां कन्दमूलफलादीनाञ्च विचारः कार्यः ।

दिनरात्रिपतीश्वरौ यदा स्खलितांशे त्रिकगौ खलेक्षितौ ।
चतुरस्रपपश्च तादृशो दुरितान्नं दुरितं हि तद्दिने ॥ १६१ ॥

दिनरात्रिपतीति । दिनरात्रिपतीश्वरौ स्खलितांशे स्वनीचांशे स्थितौ त्रिकगौ खलेक्षितौ वा स्यातां, चतुरस्रपपश्च तादृशश्चेत्तद्दिने दुरितान्नं दुरितं दुर्लभं स्यात् ।

निशाकरेशांशपयोर्बलेन वाच्यो निशायां सुरतप्रसङ्गः ।
दिवाकरेशांशपयोर्बलेनज्ञेयोदिवाऽथोललनारतोत्सवः १६२

निशेति । निशाकरेशांशपयोः चन्द्राराशीश्वरस्य तदंशेश्वरस्य च बलेन निशायां सुरतप्रसङ्गो वाच्यः । यद्दिने तयोर्बलवत्त्वं संभवे सति तद्दिने सुरतो वाच्यः । अन्यत् सुगमम् ।

अमलं रत्नाभरणं कण्ठाभरणं कृतं येन ।
गौरीसुतप्रसादाल्लभतादायुः श्रियं कीर्त्तिम् ॥ १६३ ॥

अमलमित्याशीर्वादो ग्रन्थसमाप्तौ ।

ग्रन्थकर्त्तुर्वंशवर्णनम् ।

नागराभ्यंतरज्ञातौ काश्यां विश्वेश्वरान्तिके ।
श्रीसुन्दाराख्यो गणको गंगाम्भःशिवसेवकः ॥ १ ॥
तेषां द्वौ तनयौ ख्यातौ रत्नश्रीनाथसंज्ञकौ ।
गुणिनौ गणकौ श्रेष्ठौ नानाविद्याविशारदौ ॥ २ ॥
धीराणां वाग्धोरणीधारमल्पं भेत्ता वेत्ता सत्सभायां सदैव ।
श्रीनाथः श्रीनाथलोकानुगामी स्वज्येष्ठाङ्के स्वौरसौ द्वौ समर्प्य ॥३॥
शांखायनश्रुतिमुखेन च वीतिहोत्रम् ।
सम्पूज्य देवविबुधादिसुगीतकीर्त्तिः ॥
रत्नाकराः सरससूक्तिमया मदीये ।
संस्थाप्य सो हृदि ययौ शिवधाममोङ्य ॥ ४ ॥
सिद्धान्तसारमथने कथने सुदक्षः ।
श्रीदाउजीति विबुधोऽस्ति सहोदरो मे ॥
तदात्मजोऽनन्तगुणीत्यनन्तो ।
दैवादनन्तपदवीं प्रययावकाले ॥ ५ ॥
कल्याणवामनवलेन्द्रसुता मदीयाः ।
शास्त्रावगाहनरता भवतां प्रसादात् ॥
तेषां कलाधरकला इव बुद्धिवृध्यै ।
सम्प्रार्थयामि भवतां चरणौ प्रपन्नः ॥ ६ ॥
कन्हैयालालस्योपरि खलु दयादृष्टिवशतः ।
सुमूढस्यैवैतां कृतिमपि विलोक्यैव विबुधाः ॥
हसन्त्वाढ्योल्लासै रथच हसितान् बालकगणान् ।
प्रपश्यन्तो रत्नाभरणघृतकण्ठान्मातिवरान् ॥ ७ ॥
श्रीवैक्रमेऽब्दे शरनागनन्दशश्युन्मितेज्येष्ठासितेदशम्यां
प्रीत्यै कृतं विबुधबालककण्ठभूषा
रत्नाढ्यमाभरणकं श्रियमातनोतु ॥ ८ ॥

शुद्धिपत्रम् ।

अशुद्धं	शुद्धं	पृष्ठ सं०	पंक्ति
शुक्रसजीव	शुक्रज्ञजीव	९	२१
अर्कवर्गा	अर्कवर्ग	,,	१४
स्वराभ्या	स्वराभ्यां	१०	१४
स्थष्टम्	स्पष्टम्	११	२२
नितरा	नितरां	१२	१०
प्रोक्त	वक्ष्यमाण	१३	६
राज्ञादीनां	राजादीनां	,,	१९
बुधश्चेत्	शुक्रश्चेत्	३०	६
वि कारान्	विकारान्	३३	१८
लग्नाद्या	लग्नाद्या	३७	६
त्रिषड़ा यस्थाः	षष्ठाष्टम व्ययस्थाः	,,	१२
त्रिषड़ाये	षष्ठाष्टमव्यये	,,	१३
त्रिषडाया	षष्ठाष्टमव्यया	३९	१९

४८ पृष्ठे ९ पङ्क्ति मारभ्य ५० पृष्ठस्थ २३ पङ्क्ति पर्यन्तमुपन्यस्त मुदाहरणं ४७ पृष्ठे " जीवाङ्के सहिते " इति श्लोकात् पूर्वमेव ज्ञेयम् ।

पत्नया	पत्न्या	५०	११
मकर नवमांश	सिंह नवमांश	६७	१५
वृक्षनिर्यास	अत्ररवर् कोलू नामानि अङ्काराणिग्रन्थ-कर्तुर्मतानि	७८	२
भ्रमउ	भ्रभउ	९९	१५
भौवुमं	भौवुमं	,,	१६

32

॥ श्रीः ॥

जन्मपत्रिका विधानम् ।

सटीकम् सटिप्पणम् ।

श्रीमज्ज्योतिर्विज्जीवनाथमिश्रैः संकलितं

तथा च–

झोपाह्व श्रीकाशिनाथमिश्रैः संपादितम्

जन्मपत्र निर्माण साधनीभूत विविधाङ्ग विषय पूर्ण, केशव्याद्यायुर्दाय-स्वराद्यायुर्दायादि नानाविधोपयोगिविषय विभूषितं। यत्रतत्रोपयुक्तोदाहरणैरलङ्कृतं ग्रन्थान्तरसाहाय्यानपेक्षतया जन्मपत्रविरचनोपयुक्तं विषयविशदीकरणाय सरलार्थ-टिप्पणीभिरलङ्कृतञ्च ।

मूल्यं २) रूप्यकद्वयमात्रम्

प्राप्तव्य स्थानं—

श्रीमज्ज्योतिर्वित् कन्हैयालाल दीक्षित

महल्ला सिद्धेश्वरी–काशी

१९५३ ई